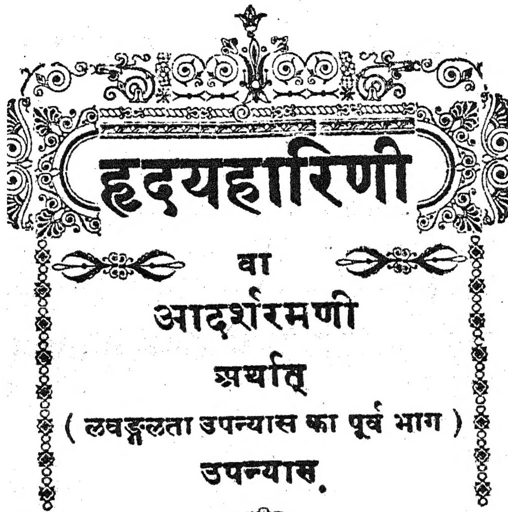
श्रीः



हृदयहारिणी

वा

आदर्शरमणी

अर्थात्

(लवङ्गलता उपन्यास का पूर्व भाग)

उपन्यास.

श्रीकिशोरीलालगोस्वामि-लिखित,

और

श्रीछबीलेलालगोस्वामि-द्वारा प्रकाशित.

—:०:—

" नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा,
मूर्द्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि । "

(उत्तररामचरितम्)

Printed by C. L. Goswami,
Shri Sudarshan Press, Brindaban.

दूसरीबार १००० } ❋ { मूल्य दस आने.

सन् १९१५ ईस्वी.

श्रीः

प्रथम संस्करण का निवेदन।

तेरह बरस के लगभग हुआ, जब कि,—सन् १८९० ई० में, हमारे अन्तरङ्ग मित्र "ब्राह्मण" सम्पादक, स्वर्गीयप्रेमदेव, पण्डित प्रताप-नारायण मिश्र (कानपुर-निवासी) सुप्रसिद्ध "हिन्दोस्थान" दैनिक पत्र के सम्पादक हुए थे, तो उन्होंने उक्त पत्र में लेख और आख्यायिका लिखने के लिये हमें बहुत ही अनुरुद्ध किया और हमारे लेखों को "स्वतंत्रस्तम्भ" में स्थान देने की प्रतिज्ञा की; अतएव हमने भी उक्त प्रियमित्र का अनुरोध पालन करने के लिये कलम उठाई और दो-तीन महीने तक लगातार उक्त पत्र के लिये कई लेख लिखे, ज उक्त पत्र में छपे हैं। उन्हीं दिनों प्यारे प्रताप की प्रेरणा से हमने "हृदयहारिणी" उपन्यास लिखा और वह (उपन्यास) ७ वीं अक्तूबर सन् १८९० ई० के हिन्दोस्थान में छपना आरम्भ होकर कई संख्याओं में समाप्त हुआ।

यद्यपि इसका उपसंहारभाग (लवङ्गलता उपन्यास) भी "हिन्दोस्थान" में छपने के लिये हमने उसी समय (वा सन् में) लिख डाला था, पर स्वाधीनचेता प्रतापमिश्र तीन-चार महीने से अधिक सम्पादकता की पराधीनता को न झेल सके और कानपुर वापस चले आए; अतएव हमारा उत्साह भी भङ्ग होगया और दूसरा उपन्यास (इसका उपसंहारभाग) अर्थात् लवङ्गलता उपन्यास) बस्तों ही में आज तक बंधा पड़ा रहा। अस्तु,—आज हम "हृदय-हारिणी" उपन्यास को अपनी "उपन्यासमासिकपुस्तक" द्वारा प्रकाशित कर उपन्यास-प्रेमियों के आगे धरते हैं और इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि इस उपन्यास के समाप्त होने पर इस (उपन्यास) के उपसंहारभाग (लवङ्गलता उपन्यास) को भी उक्त "उपन्यास-मासिकपुस्तक" द्वारा प्रकाशित करेंगे।

काशी,
१—३—१९०४

निवेदक.—
श्रीकिशोरीलालगोस्वामी

श्रीः

द्वितीय संस्करण का निवेदन ।

बहुत दिनों के बाद आज यह अवसर आकर प्राप्त हुआ कि लवङ्गलता और हृदयहारिणी का द्वितीय संस्करण हिन्दी के रसिक उपन्यास-प्रेमियों के आगे हम पुनः उपस्थित कर सके। यद्यपि ये दोनों उपन्यास कई वर्ष पूर्व ही निःशेष होचुके थे, परन्तु बिना निज के प्रेस के, इनका तथा हमारी अन्यान्य पुस्तकों का पुनः छपना दुघट था। सो वह दिक़्क़त भी ईश्वरानुग्रह से दूर होगई और हमने "श्रीसुदर्शनप्रेस" नामक मुद्रणालय स्थापित कर दिया। अब हमारी पुस्तकों—विशेष कर उपन्यासों के छपने में कोई अड़चन न होगी; और—"उपन्यास" नाम की 'मासिक पुस्तक,' जो प्रेस के न होने के कारण कई वर्षों से बन्द थी, अब वह नई सजधज के साथ निकाली जायगी। अतएव हिंदी के प्रेमी और उपन्यास के रसिकों को अब शीघ्र अपना अपना नाम ग्राहकश्रेणी में जल्द लिखा लेना चाहिए! यहां पर यह भी उपन्यास के प्रेमी पाठकों को समझ लेना चाहिए कि "लखनऊ की कब्र" नामक हमारा उपन्यास जो अभी तक अधूरा है, वह भी "उपन्यास" मासिक पुस्तक द्वारा पूरा कर दिया जायगा।

हमारे जो उपन्यास प्रथम संस्करण के निःशेष होगए हैं,—जैसे चपला, स्वर्गीयकुसुम, राजकुमारी इत्यादि—वे पुनः छप रहे हैं और बहुत जल्द उपन्यास-प्रेमियों के दृष्टिगोचर होंगे।

अन्त में हम हिन्दी के रसिक उपन्यास-प्रेमियों को अनेक-हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि आपलोगों ने हमारे उपन्यासों की बड़ी ही कद्र की और इन्हें हिन्दी के उच्च कोटि के उपन्यासों में गिना। आशा है कि ईश्वरानुग्रह से हम इसी प्रकार जीवन-पर्यन्त अपने उपन्यासों से आपलोगों का मनोरञ्जन किया करेंगे।

वृन्दावन
ता० १ जनवरी, सन् १९१५ ई०

रसिकानुगामी—
श्रीकिशोरीलालगोस्वामी.

श्रीः

समर्पण

आदरणीया, श्रीमती, रानी

श्रीराजकुँवरि देवीजी!

"लवङ्गलता वा आदर्शबाला" उपन्यास को जिस आदर के साथ आपने ग्रहण कर हमें सन्मानित किया है, यह आप जैसी विदुषी, गुणग्राहिका, उच्चकुल-सम्भूता, नारीरत्न के लिये योग्य और उचित ही हुआ है। सच है, 'आदर्शबाला' के बिना "आदर्शबाला" का गौरव दूसरा कौन समझ सकता है!

अतएव, श्रीमतीजी! आज यह "हृदयहारिणी वा आदर्शरमणी" भी बहुमान पुरस्सर आपको समर्पित की गई। आशा है कि आप इसे भी उसी आदर से ग्रहण करेंगी, जिस सन्मान से कि आपने "आदर्शबाला" को ग्रहण किया है; क्योंकि "आदर्शरमणी" ही "आदर्शरमणी" की समुचित प्रतिष्ठा कर सकती हैं।

आपके आज्ञानुसार केवल आपका नाम प्रगट किया गया है और सम्पूर्ण परिचय गोप्य रक्खा गया है।

काशी,
ता०१-जून सन्१९०४ई० | समर्पक —
श्रीकिशोरीलालगोस्वामी

आहारः

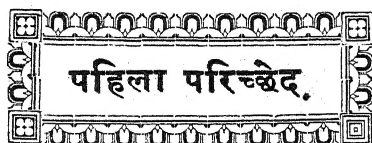


हृदयहारिणी

वा

आदर्श रमणी.

उपन्यास.



पहिला परिच्छेद.

पथ में परिचय ।

" स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे "

आज इस बात को सौ डेढ़ सौ बरस से भी अधिक हुए होंगे, जिस समय मुर्शिदाबाद पूरी उन्नति पर था और वहांके रहनेवाले भी एक प्रकार से अच्छी अवस्थाही में थे; किन्तु यह बात सभी कोई जानते हैं कि सदा सब का समय एकसा नहीं बीतता ।[जो आज ऊंचा है, कल वह नीचा होगा; जो कल नीचा था, आज वह ऊंचा हुआ; संसार की रीति हो ऐसी है,] इसमें न कभी उलट फेर हुआ और न कभी होगा । यही कारण है कि आज दुराचारी सिराजुद्दौला का प्रतापसूर्य्य अस्तप्राय और अंग्रेजों की सहायता से मीरजाफ़र ख़ां का उदय हो रहा था, इसीसे राज के उलट फेर होने से देश की जैसी दुर्दशा होनी चाहिए, मुर्शिदाबाद की भी वैसी ही दशा थी और सुहावना नगर पिशाच की छाया पड़ने से मानों भयानक बन सा प्रतीत होता था; अर्थात् जिस मुर्शिदाबाद की उन्नत अवस्था

और वहांके रहनेवालों की अच्छी दशा का हाल हम ऊपर लिख आए हैं, सिराजुद्दौला के राज्य के समय उस नगर और वहांके रहने वालों की पूरी दुर्दशा भी हो गई थी।

एक दिन तीसरे पहर के समय मुर्शिदाबाद के राजमार्ग में बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई थी, जिसका कारण यह था कि उस दिन नव्वाब सिराजुद्दौला ने एक 'अजीब तमाशा' होने की मुनादी कराई थी, इसीलिये नव्वाबी महल के सामनेवाले मैदान में बड़ी खिलकत इकट्ठी हुई थी; पर यह बात अभी तक किसीको भी नहीं मालूम हुई थी कि, 'वह कौनसा अजीब तमाशा है, जिसके लिये नव्वाब साहब ने मुनादी फेरी है।'

उसी समय उसी मार्ग से होती हुई एक परमसुन्दरी बालिका पैर उठाती हुई ज़ल्दी जल्दी एक ओर को जा रही थी, उसके आंचल के कोने में कुछ बंधा हुआ था, जिसकी पोटली उसने बगल में दबाली थी और उसकी एक मुट्ठी में कागज में लपेटी हुई कोई वस्तु थी। उस बालिका के मुखड़े से सीधापन, पहिनावे से दरिद्रता, रूपरंग से उत्तम कुल की महिमा और चाल से घबराहट टपकी पड़ती थी। उसने नीले रंग की देसी साड़ी से भली भांति अपना शरीर ढंक लिया था और उस पर से एक मैली चादर ओढ़ ली थी। इतना होने पर भी उसकी अलौकिक सुन्दरता उसी भाँति देखने वालों की आंखों में चकाचौंधी लाने के लिये काफ़ी थी, जैसे काले मेघों की ओट में छिपा हुआ पूनों का चांद रह रह कर बादल से बाहर निकल लोगों की आंखें चौंधिया देता है।

निदान, उसी भीड़ में से होती, अपने तईं दुराचारियों से बचाती और कतराती हुई वह बालिका एक ओर को जा रही थी। इतने ही में एकाएक भीड़ में खलबली पड़ गई और बड़ा हल्ला मचा। लोग एक दूसरों पर गिरने, ठेला ठेली करने, भागने आपस में धक्काधुक्की और गाली गलौज करने लगे। उस भीड़ के उस झमेले में बिचारी बालिका भी पड़ गई थी, सो वह कई बार सड़क पर गिरी और किसी किसी भांति संभल कर उठी; पर इस गिरा पड़ी में उसके आंचल की पोटली, जो उसकी बगल में दबी हुई थी, फट कर बिखर गई और उसमें बंधा हुआ 'धान का लावा' गिर कर तितर बितर हो गया। इतने पर भी उस बालिका ने अपनी

मुट्ठी में दबे हुए काग़ज़ को नहीं गिरने दिया। देखते देखते मैदान और सड़क तमाशाइयों से खाली हो गई, केवल वही बिचारी बालिका खड़ी खड़ी रोती, मिट्टी में मिले हुए लावे के लिये हाथ मलती और पछताती थी। उस समय उसकी घबराहट इतनी बढ़ी हुई थी, जैसी अपने जूथ से बिछुरने पर भोली हरिनी की होती है।

देखते देखते वह राजपथ तमाशाइयों से खाली हो गया, केवल वही बिचारी बालिका भैचकसी हो, कभी धूल में मिले हुए लावे की ओर और कभी इधर उधर देखती हुई जहां की तहां ठिठक रही थी; कि इतने ही में एक मतवाला हाथी झूमता झामता, चिग्घाड़ें मारता, सूंड़ फटकारता, उसी ओर को दौड़ता हुआ आने लगा, जिस ओर वह अनाथिनी बालिका घबराहट में फंसी हुई खड़ी थी।

यह बात हम अभी ऊपर कह आए हैं कि आज किसी तमाशा होने की मुनादी सुन कर नव्वाब-भवन के सामने मैदान में तमाशाइयों की बड़ी भीड़ भाड़ इकट्ठी हुई थी; पर वह कौनसा तमाशा था, जिसके लिये नव्वाब ने मुनादी पिटवाई थी ? इस विषय में हम इतना ही लिखना उचित समझते हैं कि दुराचारी नव्वाब सिराजुद्दौला को उस दिन यह तरंग सूझी थी कि,—"जब खूब घनी भीड़ इकट्ठी होजाय, तो उस पर एक मतवाले हाथी को छोड़ना और फिर वह हाथी किस किस को किस किस तरह चीरता, फाड़ता, कुचलता और मारता है; यह तमाशा देखकर अपने दिल को शाद करना।" सो जब भली भांति मेला जम गया तो नव्वाब की आज्ञा से मतवाला हाथी छोड़ा गया। उसी हाथी के कारण मेले में खलबली पड़ गई थी, बात की बात में मेला तितर बितर होगया था और लोग अपनी जान ले ले कर एक दूसरों पर गिरते हुए, जिसका जिधर मुंह पड़ता, भागे जारहे थे। उसी झमेले में फंस कर बिचारी बालिका की जो कुछ दुर्दशा हुई थी, उसका हाल हम ऊपर लिख आए हैं।

निदान, अपनी ओर मतवाले हाथी को आता हुआ देख कर भी वह बालिका जहांकी तहां कठपुतली की भांति खड़ी ही रह गई और चारों ओर से स्त्री पुरुषों का कोलाहल सुनाई देने लगा।

कोई कहता,—"हा! परमेश्वर! अब यह लड़की मरी।" कोई

कहता,–"अब यह किसी तरह नहीं बच सकती।" कोई चिल्लाता, "अरी बावली भाग जा, भाग जा, देखती नहीं कि नव्वाब का मतवाला हाथी तेरे ही ऊपर झपटा हुआ आरहा है।"

यों हीं चारों ओर से लोगों की चिल्लाहट सुनाई देने लगी, पर कोई भी माई का लाल उस बिचारी अनाथ बालिका के बचाने के लिए आगे न बढ़ा।

ऊपर अपनी अपनी अटारियों से झांकती हुई स्त्रियों ने करुणा भरे शब्दों में कहना आरम्भ किया। एक बोली,–"हाय! बस इसी छिन में इसे हाथी चीरा चाहता है।" दूसरी कहने लगी,— "हाय, हाय! सूंड़ घुमाकर कैसे बेग से हाथी दौड़ा आरहा है।" तीसरी ने कहा,–"अरी! यह देख, हाय, हाय! बस अब देर नहीं है। बस एक ही झपट्टे में इसे हाथी लिया चाहता है।"

निदान, भय चकित बालिका जहांकी तहां खड़ी ही रह गई और वह हाथी उसके बहुत ही समीप आगया। संभव था कि वह अपनी सूंड़ में लपेट कर उस बालिका को दे मारे, या उसे अपने पैरों से कुचल डाले; इतने ही में एक जहरीला तीर न जाने किधर से आकर उस हाथी की दोनों आखों के ठीक बीच में लगा, जिसके लगते ही वह चिग्घाड़ें मारता हुआ पीछे की ओर घूमा और जमीन में गिर, दो चार बार हाथ पैर मार कर मर गया।

हाथी के मरते ही बात की बात में फिर भीड़ जुड़ गई और बालिका मन ही मन जगदीश्वर को धन्यवाद देती हुई, एक ओर को चल निकली, पर उस बिचारी का 'लावा' वहीं धूल में मिल गया था।

हाथी के मरने पर फिर घनी भीड़ जम गई थी, उसमें से एक व्यक्ति ने कहा,—"वाह, वाह! यह कैसी बिचित्र बाणविद्या की शिक्षा है! मानो साक्षात अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुषपर आग्नेय बाण खैंच कर इस गजेन्द्र को मारा हो!"

दूसरे ने कहा,—"जो कुछ हो, पर हमें तो इस बात का पूरा भरोसा है कि यह बीर अवश्य कोई हिन्दू होगा; क्यों कि बिना हिन्दुओं के ऐसी बाणविद्या का परिचय भूमण्डल में और कौन दे सकता है? यदि हिन्दुओं में कुछ दोष है तो केवल यही कि इनमें 'एका' नहीं है। यदि इनमें आपस की फूट न होती तो इस पवित्र भारतभूमि पर दुराचारी यवनों के पैर न पड़ते। इतिहास के जानने

वालों से यह बात छिपी नहीं है कि भारतवर्ष को मुसलमानों ने तल्वार के ज़ोर से नहीं, बरन छल, कपट और धूर्तता से ही अपने आधीन किया था।"

तीसरा बोल उठा,-"भाई! तुम सच कहते हो। यदि जयचन्द्र को दुर्बुद्धि ने न घेरा होता तो आज दिन यह भारत पराधीनता की बेड़ी से जकड़ा हुआ न दिखलाई देता। अस्तु, जो कुछ हो, पर यह तीर दक्खिन की ओर से आया है, इसलिये हमारा चित्त इस बात के जानने के लिये घबड़ा रहा है कि इस तीर का चलानेवाला कौन व्यक्ति है!"

चौथे ने कहा,—"अरे भाई! नव्वाबसाहब का हाथी जिसने मारा है, उसका प्रगट न होना ही अच्छा है; क्यों कि यह बात क्या तुम नहीं जानते कि जिसने नव्वाब का हाथी मारा है, प्रगट होने पर वह भी हाथी ही की गति को पावेगा!"

पांचवां,-"तुम ठीक कहते हो, पर जहां तक हम समझते हैं, ऐसे ऐसे वीर दुराचारी सिराजुद्दौला से तो क्या, यमराज से भी नहीं डरते।"

निदान, इसी प्रकार हाथी के चारों ओर घिरी हुई भीड़ में लोग आपस में भांति भांति के तर्क बितर्क कर रहे थे, इतने ही में एक सुन्दर युवापुरुष ने भीड़ को चीर और हाथी के पास पहुंच कर एक व्यक्ति से पूछा,-"क्यों महाशय! वह बालिका किधर गई, जो यहां पर खड़ी थी? क्या आप कृपाकर बतलावेंगे?"

उस युवक की ऐसी मीठी बात सुन कर वहां पर खड़े हुए सभी लोग टकटकी बांधकर उसे निहारने और आपस में काना फूंसी करने लगे।

एकने कहा,-"अरे! यह तो साक्षात वीरता के अवतार ही दिखलाई पड़ते हैं। अहा! इतने थोड़े वयस में ऐसी बीरता कभी नहीं देखी थी। हो न हो, इन्हीं महात्मा ने आज उस अनाथिनी बालिका के प्राण बचाए होंगे।"

युवक के हाथ में एक छोटीसी धनुष और पीठ पर तरकश बंधा हुआ देख दूसरे ने पूछा,—"क्यों, महाशय! आपके हाथ में धनुष देखने से हमको ऐसा जान पड़ता है कि उस खूनी हाथी से इस नगरनिवासियों के—विशेष कर उस असहाय बालिका के प्राण

की रक्षा आपही ने की होगी।”

यह सुन कर युवक ने अपनी छोटीसी धनुहीं की ओर देखा और मुस्कुराकर कहा,—“भाइयों! भला इस छोटी सी धनुष से इतना बड़ा काम क्यों कर हो सकता है?”

दूसरे ने कहा,—“क्यों नहीं हो सकता! हिन्दू वीर क्या नहीं कर सकते!”

युवक ने कहा,—“आपका कहना ठीक है, पर अब भारत का वह दिन नहीं रहा। अब तो वीरता का नाम भर रह गया है। हां, जब भारत में एका था, तब वीरता भी अपनी पूरी औज पर थी; किन्तु जब से फूट का पौरा आया, वीरता ने भी यहांसे किनारा कसा। इस लिये अब यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि,—‘निर्वीर-मुर्वीतलम्,’ क्यों कि एका से बढ़ कर दूसरी वीरता संसार में हुई नहीं।”

दूसरे ने कहा,—“आपका कहना ठीक है, पर हमारे प्रश्न का उत्तर तो आपने दिया ही नहीं।”

युवा ने मुस्कुरा कर कहा,—“भला, मैं उस बात का क्या उत्तर दूं? मुझ में तो चेंटी मारने की भी सामर्थ्य नहीं है। अस्तु, आप लोग यह बतला सकते हैं कि वह बालिका किधर गई?”

इस पर कई लोगों ने, जिस ओर वह बालिका गई थी, युवक से कह दिया और उसने उसी ओर जल्दी जल्दी अपना पैर बढ़ाया।

युवक की बातों का बहुतों ने तो मर्मही न समझा; अनेकों ने संदेहही में अपना जी उलझा रक्खा और कइयों ने इस बात का निश्चय कर लिया कि,—‘इस युवक के अतिरिक्त हाथी का मारनेवाला कोई दूसरा नहीं है।’

निदान, धीरे धीरे भीड़ छंट गई राजमार्ग में थोड़े से ही लोग आते जाते दिखलाई पड़ने लगे और संध्या होते होते नव्वाब की ओर से दूसरी मुनादी फेरी गई कि,—“जिसने हाथी को मारा है, वह दर्बार में हाज़िर होकर इनाम लेवे;” पर जहाँ तक हम जानते हैं, आज तक कोई भी हाथी मारने का इनाम लेने नव्वाब के पास नहीं गया; किन्तु यदि कोई जाता और इनाम चाहता तो नव्वाब सिराजुद्दौला उसे क्या देता? यही कि नव्वाब उस व्यक्ति को भी झटपट वहीं पहुंचा देता, जहां पर उसका हाथी मर कर

गया था ! यदि इस पर कोई यह प्रश्न करै कि,—' नव्वाब के दिल का हाल तुमने क्योंकर जाना ?' तो उसका उत्तर हम इतना ही दे सकते हैं कि, "जहाँ न जायं रवि, वहां पहुंचें कवि।" बस यह उत्तर तो ठीक हुआ न ?



दूसरा परिच्छेद.

संसार सुख ।

" चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च "

संसार बड़ा विलक्षण है, क्योंकि इसके घूमते हुए चक्र की धुरी का भेद कोई भी नहीं पा सकता। इसीसे जो कल दुखी दिखलाई देता था, आज सुखी दीख पड़ता है और जो आज सुखी है, कल उसकी क्या अवस्था होगी, इसे कौन कह सकता है !

इस बात को सौ डेढ़सौ बरस से भी अधिक बीत गए, जब्र वंगदेश के कृष्णनगर में महाराज धनेश्वरसिंह राज करते थे । इन के रामराज्य की उपमा इससे बढ़कर और क्या दी जा सकती है कि सारी प्रजा इन्हें पिता के समान मानतीं और ये भी प्रजाओं का पुत्र के समान पालन करते थे। जब कि राजा के लिये अपना सर्वस्व तो क्या, सिर तक दे डालना प्रजा का सनातन धर्म है, तो राजा का भी यही कर्तव्य है कि वह प्रजाओं को पुत्र समान माने और रात दिन उनके दुःख दूर करने का यत्न किया करे। महाराज धनेश्वरसिंह में यही बात थी, इसी लिये सारी प्रजा राजा के सुख से सुखी और दुःख से दुखी होती और रात दिन यही सोचा करती कि,—' क्योंकर यह शरीर महाराज के काम आवे। '

महाराज धनेश्वरसिंह की स्त्री का नाम कमलादेवी था, जो साक्षात कमलादेवी ही थीं । महाराज धनेश्वरसिंह की महारानी में जिन जिन गुणों की आवश्यकता थी, महारानी कमलादेवी में वे सभी गुण कूट कूट कर भरे हुए थे; मानों विधाता ने इस जुगल जोड़ी को बना कर अपनी अनमेल सृष्टि का प्रायश्चित्त किया था।

कमलादेवी राजगृह के राजा लक्ष्मणसिंह की एकमात्र कन्या

थीं और महाराज धनेश्वरसिंह की पटरानी बनकर उन्होंने इस प्रवाद को एकदम मिटा दिया था कि,—'वाम विधाता संसार में कभी समान जोड़ी मिलाता ही नहीं।' किन्तु कुटिल काल की टेढ़ी चाल से किसीका चारा नहीं चलता, इसीसे सबका सदा एक सा दिन भी नहीं बीतता, संसार का नियम ही ऐसा है। यदि काल का जोर धनिकों पर न चलता होता तो संसार के सभी कंगाल एकही दिन हाय मार कर मर गए होते और धनवानों के अभिमान का कोई ठिकाना न रहा होता; पर ऐसा नहीं है। क्योंकि काल को एक ही आंख है, जिससे वह संसार के सभी छोटे बड़े को समान भाव से देखता है। इसी कारण कमलादेवी के लिये भी दुखदाई कालरात्रि आ उपस्थित हुई।

मुसलमानों के अत्याचार से राजगृह का राज (सन् १७४० ई०) तहस नहस हो गया और राजा लक्ष्मणसिंह बड़ी वीरता से अनगिनतिन मुसल्मानों के सिर काट, वीरगति को पहुंचे। यदि मुसलमानी सेना छल कपट छोड़ कर धर्म्मयुद्ध करती तो कभी राजगृह का सत्यानाश न होता और न राजा लक्ष्मणसिंह को ही अकाल ही में काल के आधीन होना पड़ता; किन्तु क्या किया जाय समय जो चाहे सो करै।

निदान, केवल कमलादेवी को छोड़ राजा लक्ष्मणसिंह के वंश में और कोई न रहा। इस महाशोक से बिचारी को छुटकारा भी नहीं मिला था कि एकाएक उन पर बिना बादल की बिजुली टूट पड़ी, आशालता मुर्झा गई, सुखसागर सूख गया, सौभाग्यसदन भस्म हो गया, हृदयदीपक बुझ गया और मानो आज संसार में उनका कोई न रहा; बरन यों कहना चाहिए कि आज कमला का प्राण मानों उड़ गया है; केवल देहपिञ्जरमात्र संसार में खड़ा है। हा! यह लिखते कलम की छाती फटती है कि आज कमलादेवी विधवा हो गई हैं और उनके प्राणपति उन्हें सदा के लिये अकेली छोड़ कर बैकुंठ सिधारे हैं।

अभी पिता के शोक से कमलादेवी ने छुटकारा भी नहीं पाया था कि उन्हें पति के वियोग रूपी आग में जलना पड़ा। यद्यपि उन्होंने पति के साथ चिता पर जल जाने के लिये बड़ा हठ किया, पर उस समय वह गर्भवती थीं, इसलिये लोगों ने उन्हें बलपूर्वक

रोक रक्खा। उस समय कमला के विलाप और प्रजाओं के हाहा-कार से सारा कृष्णनगर स्मशान सा बन गया था और क्यों न ऐसा होता, जब कि आज कमला का सर्वनाश होगया और प्रजाओं का पालनकर्ता सच्चा पिता ही उठ गया ! ! हमारी लेखनी में यह सामर्थ्य नहीं है कि यह उस श क के चित्र को खैंच सके; इसलिये उस विषय को हम यहीं पर समाप्त करते हैं ।

निदान, राज्य का सारा भार सुयोग्य मंत्री महीधर शर्म्मा के हाथ में सौंपा गया, क्यों कि वे इस योग्य थे और उनमें राजभक्ति के अतिरिक्त वे सभी गुण भरे हुए थे, जिनका होना एक योग्य मंत्री के लिये बहुत आवश्यक है।

यद्यपि महाराज के बैकुण्ठ सिधारने से महीधर शर्म्मा का कलेजा टुकड़े टुकड़े हो गया था, पर तौ भी उन्होंने ऐसी अच्छी रीति से राज चलाना आरम्भ किया कि जिसका नाम ।

महाराज के मरने के तीन महीने पीछे कमलादेवी ने चन्द्रकला की भांति एक परम सुन्दर कन्यारत्न को प्रसव किया। पुत्र से बढ़कर लाड़चाव से उसका वह लालन पालन करने लगीं और उसीका मुंह देख कर उन्होंने अपने पिता और पति के वियोग रूपी आग को धीरे धीरे ठढा करना आरम्भ किया; किन्तु इतने पर भी बिचारी कमला की जान को चैन न मिला, क्यों कि जब दैव प्रतिकूल होता है, तब वह किसीको छिनभर भी कहीं सुस्ताकर सांस लेने का अवसर नहीं देता ।

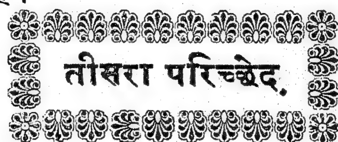
निदान, चोट पर चोट खाने से कमला का कलेजा बिल्कुल चकनाचूर हो गया था, तौ भी उनकी दशा पर काल को दया न आई और ढांके के नव्वाब निवाइसमुहम्मद (जो अलीबर्दीख़ां का दामाद था) की सनीचर की सी आंख कृष्णनगर पर पड़ी। भला, ऐसे अवसर को वह दुराचारी कब हाथ से जाने दे सकता था, जब कि कृष्णनगर के महाराज मर चुके थे, महारानी अपने आपे में न थीं, प्रजाओं का जी टूट सा गया था और मन्त्री के हजार सिर पटकने पर भी राज्य में एक प्रकार की उदासी छाई हुई थी।

सो एकाएक निवाइसमुहम्मद ने कृष्णनगर को घेर कर बात की बात में उसे अपने आधीन कर लिया। यद्यपि राज्य की सेना

जी खोल कर लड़ी तो सही, पर एकाएक मुसलमानों के छापा मारने से वह उनका कुछ कर धर न सकी और राज्य के बड़े बड़े शूरवीर और कर्मचारी मारे गए। यह दशा देख कमलादेवी का शोक सौगुना बढ़ गया और वह सब भांति असहाय हो गईं। तब वह धर्म बचाने के लिये अपनी तीन चार बरस की कन्या को साथ ले (सन् १७४५ ई०) भेस बदल कर कृष्णनगर से भागीं। उस समय चम्पा नाम की एक दासी उनके साथ थी। निदान, वहांसे भाग कर कमलादेवी अपनी कन्या और चम्पा को साथ लिये हुईं, अपनी मामी के घर मुर्शिदाबाद में चली आईं।

किसी समय कमला के मामा राजसिंह का जमाना बहुत ही अच्छा था और वे मुर्शिदाबाद के बड़े भारी ज़िमीदारों में गिने जाते थे; पर मुसलमानी अत्याचार ने उन्हे भी मिट्टी में मिला छोड़ा और उनके मरने पर उनकी स्त्री, जिनका नाम बिमला था, बड़ी कठिनाई से अपना दिन बिताने लगी थीं। सो कमलादेवी अपनी लड़की और चम्पा दासी को साथ लिये हुई अपनी मामी बिमला के यहां चली आईं और दोनों जनी किसी भांति अपने दुःख के दिन काटने लगीं।

दुष्ट मुसलमानों ने कृष्णनगर के मन्त्री महीधरशर्म्मा को बुरी तरह से मार डाला और उनके जवान बेटे रघुनन्दन शर्म्मा की नाक कान काट ज़बर्दस्ती उन्हें मुसलमान बना डाला और देखते देखते सारा कृष्णनगर पिशाचों की लीलाभूमि बन गया। उसदिन कृष्णनगर में जैसा भयङ्कर पैशाचिक अत्याचार हुआ था, उसका साक्षी इतिहास है।



तीसरा परिच्छेद.

अबला का आधार।

" परोपकाराय सतां विभूतयः "

ऊपर यह बात हम कह आए हैं कि बालिका का पता लगा कर युवा जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता हुआ उस ओर को चल निकला, जिधर बालिका के जाने का समाचार उसने पाया था। थोड़ी दूर जाने पर उसने देखा

कि,–'वही बालिका जल्दी जल्दी पैर बढ़ाती हुई चली जा रही है।' यह देख, युवक और तेज़ी के साथ आगे बढ़ने लगा और बात की बात में बालिका के बराबर पहुंच गया। अपने पास एक अनजाने मनुष्य को आया हुआ देख, एक बेर तो वह बालिका घबरा उठी, पर जब उसने भली भांति उस व्यक्ति को सिर से पैर तलक निहारा तो चट उसके मन का भाव बदल गया और डर जाता रहा। फिर उसने कुछ मुस्कुराहट और कुछ उदासी मिले हुए भाव को झलका कर युवा की ओर निहारते निहारते कहा,—

"एं! आज मैं यह क्या देख रही हूं! इतने दिनों पीछे, इस समय आप कहांसे यहां आ पहुंचे? हाय! हमलोगों को तो आप ने ऐसा भुला दिया कि मानो कभी की जान पहिचान हो नहीं थी। खैर, यह बतलाइए कि आप कब आए? इतने दिनों तक आप थे कहां? मुझे तो अब आप बिलकुल भूलही गए होंगे? क्यों! जान पड़ता है कि अब आप — — –"

इससे आगे बालिका से और कुछ न कहा गया, क्यों कि लज्जा से उसका गला रुंध गया था, चेहरा लाल हो आया था, आंखे नीची होगई थीं और कलेजा धड़कने लग गया था। उसकी ऐसी दशा देख युवा ने एक ठंढी सांस भरी और मीठेपन के साथ कहा,—

"एं! तुम्हारे मुंह से आज कैसी बात निकल रही है! भला, ऐसा तुम्हें बिश्वास है कि मैं प्राण रहते, कभी तुम्हें भूल सकूंगा? क्या एकाएक यहांसे मेरे चले जाने का समाचार तुम्हें किसीने नहीं दिया और क्या अब कोई व्यक्ति तुम्हारी टोपी नहीं बिकवाता?"

बालिका ने आंखों में आंसू भर कर कहा,—

"नहीं, नहीं, कोई भी नहीं। क्यों कि अब इस संसार में सिवा आपके हमलोगों की सुध लेनेवाला दूसरा कौन है, जो आपका शुभ संबाद हमलोगों को देता या टोपियां बिकवाता। बरस दिन से ऊपर हुआ, जिस दिन आप, हमलोगों से बिना कहे सुने, एकाएक गायब हो गए थे, उस दिन पीछे बस आज ही आप के दर्शन हुए। खैर, यह तो बतलाइए कि इतने दिनों तक आप कहाँ थे और यहां कब आए?"

बालिका की सरलता से भरी हुई बातें सुनकर युवा के मन में

एकाएक महा क्रोध का उदय हो आया, आंखें लाल हो गईं और सारा शरीर कांपने लगा; किन्तु उसने बड़ी कठिनाई से अपने मन के बेग को रोका और बड़ी नम्रता से कहा,–

"हा! मैं नहीं जानता था कि इस संसार में मित्रता के जामें के भीतर कहीं कहीं शत्रुता भी छिपी रहती है। अस्तु, मेरी आज्ञा मेट कर जिस दुष्ट ने तुम्हारी सहायता से मुंह मोड़ा, उसे इस अपराध का भरपूर दण्ड दिया जायगा। खैर, सुनो आज सबेरे मैं यहां आया। मैं तुम्हारे यहां आता ही था कि मार्ग में भीड़ भाड़ देख वहां पर ठहर गया था; परन्तु ईश्वर के अनुग्रह से ठीक समय पर मैं वहां पहुंच गया था, इसीसे कुशल हुई, नहीं तो आज बड़ा भारी अनर्थ हो जाता और मेरे लिये संसार स्मशान सा बन जाता। चलो, और बातें घर चलकर होंगी। हां, यह तो बतलाओ कि मां भली चंगी हैं?"

मां का नाम सुनते ही बालिका की आंखों में आंसू भर आए और उसने ठंढी सांस भर कर कहा,—

"हा! ईश्वरही कुशल करे! मां का तो अन्त समय आ पहुंचा है। कई महीनों से वह ज्वर भोगते भोगते अब इतनी गल गई हैं कि चिन्हाई ही नहीं देतीं। खाना पीना सब छूट गया है, केवल 'राम नाम' की रट लग रही है। आपके लिये वह बराबर आंसू ढलकातीं और आपको याद किया करतीं हैं।"

यह सुनकर युवक का कलेजा फटने लगा और उसने लंबी सांस लेकर कहा,–

"हा! परमेश्वर! यह मैंने आज क्या सुना! मां की यह दशा है! तो चलो, जल्दी घर चलें।"

बालिका,–"आप भी चलिएगा न?"

युवक,–"अवश्य चलूंगा। और क्यों कुसुम! मैंने तुमसे हजारों बार इस बात को समझाया कि तुम मुझे 'आप' कह कर न पुकारा करो, पर तुम इतनी हठीली हो कि 'आप, आप' का कहना नहीं छोड़तीं। खैर, आज मैं फिर तुम्हें समझाता हूं कि यदि अब से तुम फिर कभी जो मुझे 'आप, आप' कहकर पुकारोगी तो लाचार होकर मुझे भी आपको 'आप' कहकर पुकारना पड़ेगा। इसलिये बतलाइए, कृपाकर बतलाइए कि अब आप राह

पर आईं या नहीं? जरा आप इस बात को सोचें तो सही कि 'आप' से 'तुम' शब्द कितना मीठा और प्यारा लगता है? 'तुम' के सुनने से जैसी कानों में अमृत की सी बूंदें टपकने लगती हैं, वैसी 'आप' से नहीं।"

किन्तु, इस बात का जवाब उस बालिका ने कुछ भी न दिया और लज्जा, संकोच, तथा स्नेह में डूबती, उतराती, जल्दी जल्दी पैर उठाती हुई वह घर की ओर चली। युवक उसके साथ ही साथ चला।

पाठकों ने कदाचित इतना तो अवश्य ही समझ लिया होगा कि बालिका का नाम 'कुसुमकुमारी' है। निदान, थोड़ी दूर जब कुसुम का घर रह गया तो उसने एक बार युवक की ओर देख और लज्जा से सिमट कर कहा,—

"अच्छा, जो आपको 'आप' से 'तुम' शब्द ज्यादे प्यारा लगता है तो मुझे 'तुम' कहने में अंटक क्या है? 'आप' न सही, 'तुम' ही सही। अच्छा तो तुम, देखो, मेरा साथ न छोड़ना। मुझे न जाने क्यों आज बड़ा डर लग रहा है; आओ चलें, जल्दी घर चलें।"

युवा ने कहा,—"मेरे रहते भी तुम्हें डर लगता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है; और क्यों, कुसुम! मैंने तुम्हें, इस बात को सैकड़ों बार समझाया था कि यह अत्याचारी नव्वाब की राजधानी है, इस लिये तुम ऐसे भयंकर नगर में दिन दो पहर अकेली न घूमा करो, पर मना करने पर भी तुम नहीं मानतीं। भला, यह तो बतलाओ कि तुम इस समय कहां गई थीं?"

कुसुम ने आंसू गेर कर कहा,—

"सुनो जी, मां की जैसी अवस्था आज कल हो रही है, उसका हाल तो मैं अभी तुम्हें सुना ही चुकी हूं। सो माँ के लिये औषध और पथ्य को धान का लावा लेने मैं गई थी। सो लावा निगोड़ा तो वहीं भीड़ में गिर गया और दवाई की पुड़िया को मैं अपनी मुट्ठी में इतने ज़ोर से दबाए हुई थी कि उसे मैंने किसी तरह भी गिरने नहीं दिया। तीन चार दिन से चम्पा भी मांदी हो गई है, इसीलिये लाचार होकर मुझे आज घर से बाहर पैर निकालना पड़ा, नहीं तो मैं क्यों निकलती; किन्तु हाय! पथ्य के लिये जो

लावा मैंने लिया था, वह तो हाथी के उपद्रव से बाटही में गिर गया, सो अब मैं मां को पथ्य काहे का दूंगी! अब तो पास पैसे भी नहीं हैं कि दुबारे आकर पथ्य के लिये कुछ खरीदूं।"

कुसुम की बातों से युवक का हृदय टुकड़े टुकड़े होने लगा और उसने अपने कलेजे को भर जोर दबाकर बड़ी कठिनाई से कहा,—

"कुछ चिन्ता नहीं, कुसुम! गिर गया तो गिर जाने दो। चलो, आगे की दूकान से खाने पीने की सामग्री और पथ्य के लिये कुछ लेलें।"

कुसुम ने लंबी सांस भर कर कहा,—"भई! अभी मैं तुमसे यह बात कह चुकी हूं कि मेरे पास तो अब एक पैसा भी नहीं रहा।"

युवक ने कहा,—"नहीं है तो क्या हुआ, मैं तो हूं। आओ मैं सब चीज़ लेता चलूं।"

इस बात को सुनकर कुसुम आगा पीछा करने लगी और सकुंच कर बोली,—

"नहीं, बीरेन्द्र! ऐसा करने से मां लड़ेंगी; और फिर अभी तक तुम्हारे देने का इतना बोझ हम लोगों के सिर चढ़ रहा है कि उससे छुटकारा पाने की घड़ी न जाने आवेगी कि नहीं, सो नहीं कह सकती; उस पर फिर तुम और भी खर्च करना चाहते हो!"

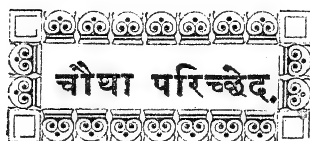
पाठकों को जानना चाहिए कि युवा का नाम 'बीरेन्द्र' था, सो उसने कुसुम की बातें अनसुनी करके कहा,—

"चलो, चलो, ये बातें रहने दो। जब कि मैं अपने मन से तुम्हें उधार देता हूं और साथ ही यह भी कहता हूं कि,—'जब तुम्हारे हाथ में पैसा आवे तो मेरा लहना चुका देना;' तब फिर तुम क्यों व्यर्थ इतना संकोच करती हो!"

निदान, बीरेन्द्र ने किसी भांति कुसुम को समझा बुझा कर पास की दूकान से थोड़ी मिठाई, धान का लावा और परवर लिया और दोनों घर की ओर चले।

यहां पर इस बात का तो कहना ही व्यर्थ है कि,—'कुसुम के साथ बीरेन्द्र की पहिले ही से जान पहिचान थी' क्यों कि यदि उन दोनों में पहिले का परिचय न होता तो वे दोनों आपस में इस ढंग की बातें कभी न करते। हां, तो बीरेन्द्र कौन है? यह बात हम

अभी नहीं बतला सकते, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि कुसुम-कुमारी कमलादेवी की लड़की थी; किन्तु बीरेन्द्र ने कमला को किस कारण से 'माता' कहा था, यह बात भी अभी नहीं खोली जासकती ।



चौथा परिच्छेद.

प्रकृत पालन ।

" दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम् । "

जिस दिन हाथी को मार कर बीरेन्द्र ने कुसुम की जान बचाई थी, उस घटना के दो बरस पहिले, एक दिन सांझ के समय कुसुम को किसी मेले में फूल की माला बेंचती हुई बीरेन्द्र ने देखा था । मेघ की ओट में भी क्या कभी चन्द्रमा का स्वाभाविक सौन्दर्य छिप सकता है ! वैसे ही दरिद्रता की चरम दशा को पहुंची हुई और मोटी साड़ी पर मैली चादर ओढ़े हुई भी कुसुम का स्वर्गीय सौन्दर्य उसके मुखड़े से टपका पड़ता था; इस लिये देखते ही बीरेन्द्र ने मन ही मन इस बात का निश्चय कर लिया था कि,—" अवश्य यह लड़की किसी अच्छे घराने की होगी, पर समय के फेर ने इसे ऐसा करने के लिये बाध्य किया होगा ! "

निदान, फिर तो बीरेन्द्र ने कुसुम से सब मालाएं खरीद लीं और बातोंही बातों उससे उसका सारा हाल भी जान लिया । जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं, उस समय कमला की मामी बिमला मर चुकी थीं । यह बात हम लिख आए हैं कि बिमला की दशा अच्छी नहीं थी और कृष्णनगर से भागने के समय कमला-देवी अपनी बेटी कुसुम और चम्पा दासी के अलावे और कुछ भी साथ नहीं लासकी थीं । तो ऐसी अवस्था में उन विचारियों का दिन कैसे कष्ट से बीतता होगा, इसका हाल वेही जान सकते हैं जिन्होंने लगा तार दुःख के झपट्टे झेले हों और अपनी इज्जत आबरू न खोकर भली भांति दुर्दिन का सामना किया हो ! बिमला के जीते

रहने तक तो कमलादेवी उतनी नहीं घबड़ाई थीं, पर जब बिमला का परलोकबास हो गया तो कमलादेवी की घबड़ाहट का वारापार न रहा; किन्तु उस समय चंपा ने उन्हें बहुत धीरज दिया। वह बाजार से फूल खरीद लाती और उसकी माला बनाकर बाजार में बेंचती, उसीसे उसका, उसकी स्वामिनी का और कुसुम का दिन किसी किसी तरह कटता था। जब कुसुम कुछ स्यानी हुई तो वह भी माला गूंथने में चम्पा की सहायता करती और कभी कभी उसके साथ बाजार भी चली जाती, और जो कभी चम्पा किसी दिन बाजार न जा सकती तो अकेली कुसुम ही माला लेकर बाजार जाती और उसे बेंच आती थी। जिस दिन पहिले पहिल बीरेन्द्र ने कुसुम को बाजार में माला बेंचती हुई देखा था, उस दिन उन्होंने उसकी सब मालाएं खरीद ली थीं और बातों ही बातों उसका सारा हाल भी जान लिया था।

कुसुम के दुःख से भरे समाचार ने परोपकारी महात्मा बीरेन्द्र के हृदय को इतना मथ डाला कि उन्होंने उसी समय कुसुम की भरपूर सहायता करने की प्रतिज्ञा की और उसका सारा भार अपने ऊपर लिया, किन्तु बीरेन्द्र की इस उदारता का असली भेद कमलादेवी ने कुछ भी नहीं जाना था कि,—'एक अनजाना मनुष्य, हम लोगों की इतनी सहायता क्यों करने लग गया है?'

पहिले पहिल जिस दिन कुसुम से बीरेन्द्र की देखाभाली हुई थी, उस दिन कुसुम के हाथ में केवल पांच मालाएं थीं; सो बीरेन्द्र ने बड़े आग्रह से पांचो मालाएं लेकर उसके हाथ में पांच रुपए धर दिए। पांच टके की माला के बदले पाँच रुपए पाकर कुसुम बहुत ही चकपकाई और वे रुपए बीरेन्द्र को लौटा कर बोली,—

"नहीं, नहीं! इन मालाओं का इतना दाम नहीं है; जितना कि आप दे रहे हैं। एक एक माला का दाम ज्यादे से ज्यादे दो दो पैसे है।"

बीरेन्द्र ने कहा,—"कुसुम! तुम्हारा कहना ठीक है। मैंने श्रीठाकुरजी से यह मनौती मानी थी कि,—'यदि मेरा अमुक काम हो जायगा तो कुमारी कन्या से पांच रुपए की माला मोल लेकर चढ़ाऊंगा।' सो, कुसुम! श्रीवृन्दावनबिहारी की कृपा से हमारा

मनोरथ भी पूरा हो गया और भाग्यों से माला लिए हुई कुमारी कन्या के (तुम्हारे) भी दर्शन मिल गए; इसलिये आज यदि तुम्हारे हाथ में केवल एक माला भी होती, तौ भी मैं पांच ही रुपए देकर उसे लेता; और यदि तुम्हारे पास आज पांच सौ मालाएं होतीं तौ भी तुम्हें पांच ही रुपए में वे सब देनी पड़तीं, इसलिये इन रुपयों के लेने में तुम किसी तरह का सोच बिचार न करो।"

यों कहकर बीरेन्द्र ने बरजोरी कुसुम की मुट्ठी में पांच रुपए फिर दे दिए। यद्यपि मनौती की बात बीरेन्द्र ने बिल्कुल मनगढ़ी ही कही थी, पर उसे भोली कुसुम ने बिल्कुल सच ही समझा और घबरा कर कहा,—

"मनौती की बात तो आप ठीक कहते हैं, किन्तु इतने रुपए देखकर मेरी मां बहुत ही लड़ेंगी और फिर वह कभी माला बेचने के लिये मुझे बाजार में न आने देंगी; इसलिये आप कृपाकर एक रुपए के पैसे मुझे भुना दीजिए, तो मैं उन पैसों में से पांच मालाओं के दाम केवल दस पैसे लेकर घर जाऊं और बाकी के पैसे और चारों रुपए यहीं—बाजार में ही कंगालों को बांट दूं।"

कुसुम की ऐसी सहिष्णुता, ऐसा त्याग, इतनी उदारता और ऐसे शान्त हृदय का परिचय पाकर बीरेन्द्र की आंखें डबडबा आईं और उन्होंने उसका हाथ पकड़कर कहा,—

"तुम घबराओ नहीं, चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं। चलकर तुम्हारी माता का भी दर्शन करूंगा और रुपयों के विषय में भी उन्हें समझा दूंगा।"

निदान, बीरेन्द्र, की इस बात ने कुसुम के चंचल चित्त को कुछ शान्त किया। फिर वह घर की ओर चली, बीरेन्द्र भी पीछे पीछे उसके साथ चले।

इसके बाद फिर क्या हुआ, इस विषय में हम यहांपर केवल इतना ही लिखना उचित समझते हैं कि कुसुम के साथ बीरेन्द्र ने उसके घर जाकर उसकी माता कमलादेवी को प्रणाम किया, उन्हें 'मां' कहकर पुकारा और माला तथा रुपयों की बात भी उन्हें भली भांति समझा दी। फिर दूसरे दिन आने की प्रतिज्ञा करके वे कमलादेवी तथा कुसुम से बिदा हुए और उन मालाओं को, जो कि अब तक उनके हाथ में ही थीं, सचमुच उन्होंने श्रीमदनमोहन जी

को चढ़ा दिया।

दूसरे दिन फिर बीरेन्द्र कुसुम के घर गए और कमलादेवी को उन्होंने 'मां' कहकर प्रणाम किया। उसी दिन से वे बराबर कमलादेवी को 'मां' कहकर पुकारते और वैसी ही भक्ति भी दिखलाते, जैसी एक सपूत अपनी माता पर प्रगट करता है। बीरेन्द्र के बर्ताव ने सरल स्वभाववाली कमलादेवी के हृदय में एक नए आनन्द का सोता जारी कर दिया और वह भी बीरेन्द्र पर पुत्र के समान स्नेह करने लगीं। फिर तो बीरेन्द्र बराबर कमलादेवी के यहां आने जाने लगे। वे बहुत अच्छे पण्डित थे और कमलादेवी भी कम न थीं, सो उन दोनों ने मिलकर कुसुम को पढ़ाना लिखाना प्रारम्भ किया और सूई के काम को भी सिखलाया। कुसुम की बुद्धि इतनी तीखी थी कि दूसरी लड़कियां जितना एक महीने में सीखतीं, वह एक दिन में सीखने लगी और दोही महीने की शिक्षा में वह चिट्ठी पत्री लिखने और कुछ सीने भी लग गई थी।

यद्यपि अब कुसुम का, घर के बाहर निकलना बिल्कुल बंद कर दिया गया था और बीरेन्द्र की सहायता से कमलादेवी के घर से दरिद्रता ने भी एक प्रकार से अपने कूच करने की पूरी पूरी तैयारी करली थी, परन्तु कमलादेवी बीरेन्द्र की सहायता लेने में राज़ी नहीं होतीं और बराबर इसी बात का हठ पकड़ कर बड़ा तर्क बितर्क करती थीं; इसलिये जब बीरेन्द्र ने देखा कि,– 'यह यों मेरी सहायता कभी न लेंगी,' तो सोचकर उन्होंने एक ढंग निकाला और एक दिन अकेले में कमलादेवी से कहा,–

"मां! मैं क्षत्री हूं और रंगपुर के महाराज रणधीरसिंह के यहां सेना में काम करता हूं। मेरे महाराज से किसी सिद्ध महात्मा ने कहा है कि;–'यदि तुम्हारी सेना के बीर सैनिक कुमारी कन्या के हाथ की सीं हुई टोपी पहिरें तो संग्राम में कभी न हारेंगे और यवन संहार करके पवित्र भारतभूमि का उद्धार कर सकेंगे,' इस लिये महाराज की आज्ञा से एक लाख टोपियां पाँच बरस में तैयार कराने का भार मैंने अपने ऊपर लिया है और सैकड़ों कुमारी कन्याओं को इस काम में लगाया है। यदि आपकी आज्ञा से कुसुम भी इस काम को करे तो इसके हाथ की सीं हुई टोपियां सेना के प्रधान प्रधान लोग पहिरेंगे। टोपी का नमूना और कपड़ा राजदर्बार से

दिया जायगा और प्रत्येक टोपी के लिये पांच रुपए सिलाई के देने का नियम भी उन्हीं सिद्ध महात्मा के आज्ञानुसार किया गया है। मैं जहां तक समझता हूँ, इसमें आपको कोई उज्र न होगा और कृपा कर इस काम में हाथ लगाने के लिये कुसुम को आप अवश्य आज्ञा देंगी ; क्योंकि इसमें तो, मां ! कोई बात अनुचित नहीं है। आपकी थोड़ीसी दया होने से एक राजा का राज्य निष्कण्टक हो जायगा और साथही भारतभूमि का भी उद्धार होगा; यह क्या कुछ थोड़े पुण्य की बात है ? "

बीरेन्द्र की बातें सुनकर कमलादेवी की आंखों से आंसू बहने लगा और उन्होंने एक ठंढी सांस भर कर कहा,-

" बेटा, बीरेन्द्र ! यदि भगवान् की ऐसीही इच्छा है तो यही सही। कुसुम तुम्हारी ही है, इसलिये उससे तुम जो चाहो सो काम ले सकते हो।"

निदान, फिर तो बीरेन्द्र ने टोपी का नमूना, कपड़ा और सीने पोहने के सब सामान कुसुम को देकर उससे टोपी सिलवाना प्रारम्भ किया। कुसुम भी जी जान से इस काम में लग गई और बड़े परिश्रम के साथ महीने में बीस टोपियां तैयार करने लगी; इससे सौ रुपए महीने उसे बीरेन्द्र देने लगे। उनकी सहायता करने की मनोकामना भी पूरी हुई और कमलादेवी के घर से दरिद्रता का भी पौरा गया। इस प्रकार लगभग एक बरस के बीत गया। इतने दिनों में बीरेन्द्र की शिक्षा से कुसुम "आदर्शरमणी" बन गई और उसका संदूक भी रुपए पैसों से भर गया ; किन्तु इतने पर भी कमला का मानसिक कष्ट दूर नहीं हुआ था और कुसुम के हृदय में एक विचित्र प्रकार के सोच ने अपना घर किया था। यद्यपि इतना सब हुआ, किन्तु दुर्भाग्य ने इतने से सुख पर भी बज्र घहरा दिया और एकाएक बीरेन्द्र, बिना कमला या कुसुम से कुछ कहे सुने गायब हो गए। कुसुम, जो बीरेन्द्र को जी जान से चाहने लग गई थी, उनके देखे बिना उसका प्राण तड़पने, जी घुटने और हृदय फटने लगा; किन्तु,—' आज नहीं आए, तो कल वे अवश्यही आवेंगे' इस आशा से उस बालिका ने अपने को आप कुछ कुछ धीरज धराया, पर उसके धीरज ने उसे कुछ भी भरोसा न दिया और दूसरे दिन भी बीरेन्द्र न आए। इसी प्रकार वह

नित्य नई आशा को मन में धर कर बीरेन्द्र से मिलने के लिये सबेरे उठती और रात को निराशा के बज्र से अपने हृदय को चकनाचूर करती हुई खाट पर पड़ रहती थी। यों ही नित्य नई आशा और निराशा से लड़ते भिड़ते बालिका ने बरस दिन बिता दिए, पर इस बीच में छिन भर के लिये भी उसकी उपासी आंखों ने बीरेन्द्र के दर्शन न पाए और न प्यासे कानों ने उनका कोई समाचार सुना।

योंही बीरेन्द्र के देखे बिना ज्यों ज्यों दिन बीतते, त्यों त्यों उनके बिरह में कुसुम सूख सूख कर कांटा सी हुई जाने लगी। कमलादेवी कुसुम की अवस्था को भली भांति परखती थीं; सो एक तो अपनी प्यारी बेटी की यह दशा और दूसरे एकाएक बीरेन्द्र का अंतर्धान होना देख उनके चुटीले चित्त ने ऐसी चोट खाई कि वह नित्य नित्य बीरेन्द्र के लिये भांति भांति के सोच करने और आंसू बहाने से इतनी गल गईं कि अन्त को उन्हें खाट पकड़नी पड़ी और शरीर दिन दिन छीजने लगा।

पाठक! बीरेन्द्र के लिये दोनों मां बेटियों के मानसिक भाव अलग अलग थे; अर्थात कमलादेवी को अपने एक ईश्वर के दिए हुए पुत्र का बिछोह था और कुसुम को अपने मानसरंजन का; और इस बात का तो उन दोनों को खयालही न था कि,-'बीरेन्द्र के गायब होने से टोपियों की खपत और रुपयों की आमाद बंद हो गई है,' क्योंकि रुपयों को तो वे दोनों कोई चीज़ही नहीं समझती थीं। किन्तु हा! इतने पर भी टोपियों की आमदनी से जो कुछ रुपए कुसुम ने बटोरे थे, बीरेन्द्र के गायब होने के दोही महीने बाद चोरी हो गए और गई गुज़री दरिद्रता ने फिर उस घर में अपना पौरा आ जमाया।

यद्यपि बीरेन्द्र के गायब होने पर भी कुछ बचे कपड़ों की कई टोपियां कुसुम ने बनाईं और चम्पा के हाथ उन्हें बेचने के लिये बाजार में भेजा, पर जिस (एक) टोपी का दाम बीरेन्द्र पांच रुपए देते थे, बाजार में उसका एक रुपए से ज्यादे दाम नहीं मिलता था; और फिर वैसी टोपी के लिये उसके पास और कपड़े भी तो न थे, इस लिये टोपियों का काम एकदम से बंद हो गया और कुसुम तथा चम्पा ने अपने फूलमाला के पुराने व्यापार का

करना फिर प्रारम्भ किया। इतने पर भी इतनी आमदनी नहीं होती थी कि वे तीनों जनी दुःख से दिन रात में एकबार भी आधे पेट खा सकें। तिस पर भी महीने में दस पांच बार ऐसा भी होता था कि कुसुम और चम्पा को कोरा उपास ही करना पड़ता, पर इस बात को वे दोनों कमलादेवी पर जराभी प्रगट न करतीं और उन्हे कुछ न कुछ खिलाही देती थीं। क्या कुसुम के लिये यह थोड़ी बड़ाई की बात है कि उसने हज़ार कष्ट सहने, भांति भांति के दुःख झेलने और उपास पर उपास करने पर भी अपनी माँ को उनके आखिरी दिन तक कभी भी भूखी नहीं रहने दिया!!! ऐसी विपत में धीरज के साथ अपने धर्म्म को बचाए रखना कुसुम का ही काम था; और फिर उसी शहर में रह कर, जहां अबलाओं के लिये रावण सदृश दुराचारी सिराजुद्दौला नव्वाबी करता था!!!

निदान, आज बरस दिन पीछे मार्ग में कुसुम और बीरेन्द्र से फिर भेंट हुई और वे हाथी से कुसुम के प्राण बचा उसके घर चले; जिसका हाल हम ऊपर लिख आए हैं।

घर के पास पहुंच कर कुसुम ने बीरेन्द्र के हाथ में छोटी सी धनुष देख आश्चर्य से पूछा,–

"क्यों, जी! क्या तुम्हींने उस खूनी हाथी को मार कर मेरी जान बचाई है? वाह, यह गुन भी तुममें है! चलो, मां यह बात सुन कर बहुतही प्रसन्न होंगी। अहा! क्या मेरी जान बचने का हाल सुन कर मां को अपार आनन्द न होगा!!!"

बीरेन्द्र ने मुस्कुरा कर कहा,—

"सुनो, कुसुम! यह सब हाल मां से जरा भी मत कहना क्योंकि उनकी जैसी हालत तुमने बतलाई है; उससे आज का हाल सुन कर उनकी हालत और भी खराब हो जायगी। देखना, भूलकर भी आज का कोइ हाल मां से न कहना।"

कुसुम ने कहा,—"अच्छा, जैसा तुम कह रहे हो, वैसा ही करूंगी। और हां, यह तो तुमने बतलाया ही नहीं कि इतने दिनों तक तुम कहां गोता मारे हुए रहे?"

बीरेन्द्र,—"चलो; घर चल कर सब हाल तुमसे कहूंगा।"

इसके अनन्तर दोनों एक साथ ही घर के द्वार पर पहुंचे और कुसुम के पुकारने पर चम्पा ने भीतर से द्वार खोल दिया।

पांचवां परिच्छेद.

उचित उद्योग।

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।"

कुटिल काल की टेढ़ी चाल बराबर ही बदला करती है, यहां तक कि बड़े बड़े त्रिकालज्ञ विद्वानों ने भी काल की इस बिलक्षण चाल का भेद नहीं पाया है। कहने का प्रयोजन यह कि जब तक संसार का अस्तित्व बना रहेगा, काल की अनिवार्य्य गति भी बराबर इसी प्रकार बदलती हुई चली जायगी; इस गति का रोकना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है।

देखिए, एक दिन वह भी था कि जब हमारा भारतवर्ष ससागरा पृथ्वी का सिरमौर बना हुआ था; यहीं के मण्डलेश्वर नृपति गण सारे भूमण्डल का शासन करते थे, इसी देश में पहिले पहिल सबगुनआगरी लक्ष्मी और सरस्वती ने जन्म लिया था, सारे संसार में सब भांति की विद्या यहीं के विद्वान ब्राह्मणों के द्वारा फैलाई गई थीं और इसी देश के विद्वानों से शिक्षा पाकर सभी असभ्य देश के रहनेवाले भी सभ्यता की चोटी तक पहुंचे थे; इस बात के अनगिनतिन प्रमाण इतिहास पुराणों में भरे पड़े हैं। देखिए, भगवान मनुजी क्या कह रहे हैं,—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।
वाल्हीका यवनाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥"

किन्तु, हा! एक दिन यह भी है कि वही स्वाधीन भारत कराल काल की कुटिल गति से अपनी सनातन की स्वाधीनता खोकर मुसल्मानों का गुलाम हुआ और फिर जहां तक होना चाहिए था, इस देश, यहां की विद्या, धर्म्म, कीर्ति, मर्य्यादा, जाति और समाज का खूब ही नाश हुआ। यहां तक कि आज दिन रामायण और महाभारत आदि इतिहासों की पुरानी बातें लोगों को बिलकुल झूठ या सपने की सी प्रतीत होने लगती हैं। क्या यह उसी सत्यानाशी काल की टेढ़ी चाल का नमूना नहीं है कि जिसने भारत

को उन्नति की ऊंची चोटी से एक दम रसातल के अंधेरे गढ़े में लेजा कर पटक दिया है !!!

जिस काल ने भारत की स्वाधीनता को मिट्टी में मिलाया, उसीकी अनिवार्य्य गति से मुसलमानों का प्रतापसूर्य भी कई सौ बरस तक खूबही तपकर अन्त में पश्चिम के महासागर में सदैव के लिये जाकर डूब गया और ब्रिटानियन (अंग्रेज़) सौदागरों ने सौदागरी के बहाने से इस देश को हड़प लिया। यद्यपि यह देश फिर भी पराधीनता की बेड़ी से जकड़ाही रह गया; पर इतना अच्छा हुआ कि अंग्रेज़ों ने मुसलमानों के अत्याचार से इस अधमरे देश का पिण्ड छुड़ाया। यद्यपि अभी तक अंग्रेज़ों ने उस उत्तम नीति का व्यवहार भारतवासियों के साथ प्रारम्भ नहीं किया है, जैसा कि वे अपने गोरे भाइयों के साथ करते हैं, पर तौ भी यहां वालों को इस बात पर संतोष है कि उनका गला अत्याचारियों से छूटा। इसीसे कहना पड़ता है कि काल की महिमा का कोई पार नहीं पा सकता, वह चाहे सो करे !!!

इतिहासों से यह बात भलीभांति प्रगट होती है कि मुसलमानों ने जब, जिस देश को अपने आधीन किया, छल, कपट और दुराचार के कारण; और जहां ये गए, वहां लूट, खसोट, फूकने, जलाने ढाहने, उजाड़ने, लौंडी, गुलाम बनाने, और हिन्दूधर्म तथा समाज को सत्यानाश करने ही में अपनी बहादुरी दिखलाई। यद्यपि इनमें भी कई बहुत अच्छे और न्यायप्रिय बादशाह तथा नव्वाब हुए हैं, पर अधिक संख्या अत्याचारियों ही की इतिहासों में भरी पड़ी है।

यह उपन्यास बंगदेश की घटनाओं से संबंध रखता है, इसलिये यहां पर हम बंगदेश में मुसलमानी हुकूमत का कुछ हाल लिखदेना उचित समझते हैं।

बंगदेश की स्वाधीनता का नाश करनेवाला पहिला नव्वाब बख़्तियार ख़िलज़ी हुआ, जो जात का अफ़गान था और दिल्ली के गुलाम बादशाह कुतबुद्दीन का भेजा हुआ बंगदेश (सन् १२०३ ई०) में आया था। इसके बाद बंगाले के कई हाकिम हुए, जिनमें गयासुद्दीन सभो में नेक था (सन् १२२० ई०)

फिर (सन् १२२७ ई०) सुगन ख़ां नव्वाब हुआ और उसके

बाद तुगरल ख़ां और उसके अनन्तर (सन् १२८२ ई०) नासिरुद्दीन। फिर क्रम से नासिरुद्दीन के दो बेटे कैकयस और फ़ीरोज़शाह बंगाले के हाकिम हुए। फ़ीरोज़शाह के मरने पर उसका बड़ा बेटा शहाबुद्दीन (सन् १३१८ ई०) बंगदेश का हाकिम हुआ; पर थोड़े ही दिनों बाद दिल्ली के बादशाह गयासुद्दीन ने बंगाले में आकर उसे गद्दी से उतार, उसके भाई नासिरुद्दीन को गद्दी दी। कुछ दिन पीछे जब मुहम्मद तुग़लक दिल्ली का बादशाह हुआ, (सन् १३३५ ई०) तो उसने क्रम से बहादुरशाह और बहराम ख़ां को बंगाले का हाकिम बनाया।

बहराम ख़ां के मरने पर उसका गुलाम फ़क़ीरुद्दीन (सन् १३३८) बंगाले का स्वाधीन नव्वाब हुआ और उसके मरने पर उसका बेटा मुज़फ्फ़र ग़ाज़ी। फिर (सन् १३५८ ई०) मग़सुद्दीन, फिर उसका बेटा सिकन्दरशाह, तदनन्तर सिकन्दर का लड़का गयासुद्दीन नव्वाब हुआ (सन् १३८६ ई०) और फिर उसे मारकर दिनाजपुर के महाराजा गणेश ने बंगदेश पर (सन् १४०५ ई०) अपनी हुकूमत कायम की।

उसके मरने पर उसका बेटा 'यदू' मुसलमान होगया और जलालुद्दीन मुहम्मद अपना नाम रखकर बंगदेश का हाकिम हुआ और उसके बाद उसका बेटा अहमदशाह।

अहमदशाह के मरने पर मुसलमानों ने शमसुद्दीन के बंश के नासिरुद्दीन को बंगाले का हाकिम बनाया और उसके मरने पर उसका बेटा बर्बरशाह मालिक हुआ। फिर (सन् १४८७ ई०) उसके गुलामों में से उसे मार एक हाकिम बन गया और फिर यहां तक मार काट बढ़ी कि दीवान सैयद अलाउद्दीन हबशी गुलामों को मार (सन् १४६४ ई०) आप हाकिम बन बैठा। उसके बाद उसका बेटा नशरतशाह हाकिम हुआ। तदनन्तर उसके भाई महमूदशाह ने उसके पुत्र फ़ीरोज़शाह को मार, तख़्त पर अपना कब्ज़ा किया; किन्तु थोड़ेही दिनों पीछे (सन १५३६ ई०) शेरशाह ने उसे मार कर बंगाले की बागडोर अपने हाथ में ली। शेरशाह के मरने पर उसके बेटे आदि कई बंगाले के हाकिम हुए, पर अन्त में सुलेमान नामक मुसलमान ने (सन् १५६३ ई०) बंगाले में अपना दबदबा जमाया। उसके मरने पर उसका बेटा बारिदशाह

नव्वाब हुआ, पर दूसरे साल उसे मार कर दायूदखां नव्वाब हुआ; किन्तु अकबरशाह ने उसे निकाल कर अपनी ओर से हुसेनकुलीखां को (सन् १५७६ ई०) बंगाले का हाकिम बनाया । यहांसे बंगाले की हुकूमत पठानों के हाथ से निकल कर मुगलों के हाथ में गई ।

सन् १५७८ ई० में हुसेनकुलीख़ां के मरने पर उनका लड़का मुज़फ्फ़रख़ां बंगाले का नव्वाब हुआ, पर गोलमाल करने के कारण वह निकाला गया और उसकी जगह पर राजा टोड़लमल और फिर राजा मानसिंह बंगाले की हुकूमत करते रहे ।

फिर (सन् १६०५ ई०) अकबरशाह के मरने पर जहांगीर ने कुतुबख़ां को बंगाले का हाकिम बनाया । इसके बाद क्रम से जहांगीरकुलीख़ां, शेखइस्लामख़ां, कासिमख़ां, इबराहिमख़ां (नूरजहांबेगम का भाई) और शाहजहाँ (जहांगीर का लड़का) बंगाले के हाकिम हुए और सन् १६२८ ई० में शाहजहां ने बादशाह होकर कासिमख़ां को बंगाले की हुकूमत दी । उसके बाद इसलाम ख़ां मसहदी (सन् १६३७ ई०) और फिर शाहजहां का दूसरा बेटा, जिसका नाम सुजा था, बंगाले के सूबेदार हुए । सुजा के मारे जाने पर मीर जुमला बंगाले का सूबेदार हुआ और उसके बाद नूरजहाँ का भतीजा शाइस्ताख़ां । (सन् १६६४ से सन् १६८६ तक)

तदनन्तर इब्राहीमख़ां बंगाले का हाकिम हुआ और सच तो यह है कि हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों की जड़ जमाने वाला यही था, जिसने बादशाह औरंगजेब को बहुत कुछ लिख पढ़कर अंग्रेज़ों के ख़ातिरख़ाह बहुतेरे सुभीते करा दिए थे । फिर मुर्शिदकुली ख़ां (सन् १७०१ ई०) बंगाले का नव्वाब हुआ । इसके मरने पर सर्फ़राज़ ख़ां बंगाले का हाकिम हुआ, पर थोड़े ही दिनो बाद उसे मार कर नेकनाम अलीवर्दीख़ां नव्वाब हुआ । यह अंग्रेज़ों की चालबाज़ी और शक्ति को भलीभांति समझ गया था, इसलिये उसने सौदागरी के मामले में उनसे कभी छेड़छाड़ नहीं की । यद्यपि उस के मुसाहबों ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध उसे बहुत कुछ उभाड़ा, पर वह किसीकी पट्टी में न आया और उसने अपने मुसाहबों से साफ़ कह दिया कि,—

"भाइयों ! थल में आग लगे तो वह मुश्किल से बुझाई जा-

सकती है, पर जो जल में ही आग लगे तो वह कैसे बुझाई जास-केगी? देखना थोड़े ही दिनों में ये सफेदरू सौदागर सारे हिन्दुस्तान पर कब्ज़ा कर लेंगे।" आखिर, उस दीर्घदर्शी नव्वाब अलीवर्दीख़ां की भविष्यवाणी अन्त को सच ही हुई।

अलीवर्दीख़ां की तीन लड़कियां थीं,—"नूरी, शीरीं और इमामन; जो उसके भाई हाज़ी अहमद के तीनों बेटों,—निवाइस महम्मद, सैयद अहमद और जैनुद्दीन को ब्याही गई थीं। अलीवर्दीख़ां ने अपने तीनों दामादों में से बड़े निवाइस महम्मद को ढाके का, बिचले सैयद अहमद को उड़ीसे का और छोटे जैनुद्दीन को बिहार का हाकिम बनाया था। फिर जब जैनुद्दीन को लड़का हुआ और वह बड़ा हुआ तो उसे अलीबर्दीख़ां ने अपना उत्तराधिकारी बनाया; उसीका नाम सिराजुद्दौला था।

सन् १७५६ ई० में सदाशय अलीवर्दीख़ां मर गया और उसके पहिले ही सिराजुद्दौला के दोनों चचा निवाइस महम्मद और सैयद अहमद भी मर गए थे; जिनमें सैयदअहमद, जो उड़ीसे का हाकिम था, अपने बेटे सकतजंग को अपना उत्तराधिकारो बना गया था। आख़िर, अलीवर्दीख़ां का जानशीन नाती सिराजुद्दौला बंगाले के तख़्त पर बैठा और मुर्शिदाबाद को उसने अपनी राजधानी बनाई। फिर तो उसने कैसे कैसे भयानक अत्याचार और कुकर्म किए और कैसी राक्षसी निर्दयता का परिचय दिया, इसका साक्षी इतिहास है। इसके साथ अंग्रेज़ों की कैसी कैसी लड़ाइयां हुईं, यह बात इतिहास में भली भांति लिखी हुई है, जिसके दोहराने की आवश्यकता नहीं है। हां, यहाँ पर केवल इतना ही कहना है कि बंगाले का अन्तिम नव्वाब सिराजुद्दौला ही हुआ। यद्यपि उसके बाद भी मीरजाफ़र आदि कई नव्वाब हुए, पर वे अंग्रेज़ सौदागरों के हाथ के निरे खिलौने थे, इस लिये उनका यहां पर नाम गिनाना व्यर्थ है। हां, तो सिराजुद्दौला ने लड़ाई में अपने भाई सकतजंग को भी मार डाला था। यदि उसके सेनापति मीरजाफ़रख़ां, ख़जानची, राजा रायदुर्लभ और महाधनी, महाजन, जगतसेठ महताबराय, सेठ अमीचंद आदि लोग उसके अत्याचार से घबरा कर उससे विश्वासघात न करते और क्लाइब से न मिल गए होते तो अंग्रेज़ों के लिए इतनी जल्दी सिरजुद्दौला का दूर करना कठिन होता, किन्तु

अंग्रेज़जाति महा उद्योगी है और लक्ष्मी या राजलक्ष्मी उद्योगी पुरुष को ही आलिङ्गन करती है । यही कारण है कि आज दिन यह जाति भारत-साम्राज्य का उपभोग करती है ।



छठवां परिच्छेद.

बिधिविडंबना ।

" विधिर्हि बलिनां बली । "

जिस समय का हाल हम इस उपन्यास में लिख रहे हैं; उस समय रंगपुर के महाराज भी बंगदेश के प्रसिद्ध राजाओं में गिने जाते थे । कहते हैं कि एक बार दिल्ली के बादशाह अकबर ने रंगपुर के महाराज को हाथी घोड़े आदि बहुमूल्य पदार्थ तोहफे के तौर पर भेजे थे, इसलिये रंगपुर के राजा लोग बराबर दिल्ली के बादशाह के पक्षपाती रहे और बंगाले के सूबेदार से कभी न दबे; किन्तु यह बात हम कह आए हैं और फिर भी कहते हैं कि समय जो चाहे सो करे । यद्यपि रंगपुर न बंगाले के कतिपय अत्याचारी सूबेदारों के बड़े बड़े हमले झेले, पर अन्त में उसका भी बल क्षीण हो गया और उसे भी समय के फेर में पड़ कर बर्बाद होना पड़ा । यद्यपि कई अत्याचारियों की शनैश्चर की सी दृष्टि उस पर लगातार पड़ती आती थी, पर अन्त में बंगाले के रावण सिराजुद्दौला ने उसे भरपूर तहस नहस कर डाला। उस समय के बंगालियों के रोदन की प्रतिध्वनि अब तक इतिहासों में गूंज रही है ।

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं, उस समय रंगपुर के बूढ़े राजा का नाम महाराजा महेन्द्रसिंह था । ये बड़े तेजस्वी, प्रतापी, प्रजावत्सल, नीतिनिपुण और संस्कृत के पूरे पण्डित थे । इनकी गुणग्राहकता और वदान्यता से उस समय बंगदेश में संस्कृत की बड़ी उन्नति हुई थी और संस्कृत के बड़े बड़े विद्वानों ने अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे थे । महाराज बड़े धर्मिष्ठ थे, प्रतिदिन तीन पहर से अधिक समय उनका पूजा पाठ में व्यतीत होता था । उनकी

अवस्था यद्यपि पचासी बरस से ऊपर पहुंच चुकी थी, पर तौभी व्यायाम और उचित आहार बिहार के कारण उन्हें कोई साठ बरस से ज्यादे उमरवाला नहीं कह सकता था। उनको एक पुत्र और एक ही कन्या थी। महाराज की स्त्री (महारानी) का नाम गिरिजादेवी था। यह मालदह के राजा की कन्या थीं। महाराज और महारानी में, जैसा चाहिए, उससे भी अधिक प्रेम था और दोनों बड़े आनन्द से इस लोक में ही स्वर्ग का सा सुख भोगते थे; किन्तु अखण्डनीय काल की महिमा ने राजा रानी में वियोग करा दिया। यद्यपि गिरिजादेवी के लिये यह बात बड़े हर्ष की हुई कि वह अपने पति के सामने ही परलोक सिधार गईं किन्तु महाराज के हृदय में प्यारी पत्नी के बिछोह की ऐसी गहरी चोट लगी कि उन्होंने उसी समय राज्य का भार अपने युवा पुत्र को देकर काशीवास करने के लिये पश्चिम की यात्रा की।

महाराज महेन्द्रसिंह के सुयोग्य पुत्र का नाम नरेन्द्रसिंह था। ये सचमुच अपने नामानुसार नरेन्द्र की पदवी पाने के योग्य थे। उस समय इनकी अवस्था केवल इक्कीस बाईस बरस की थी, जब इनके पिता काशीवासी हुए थे। ये संस्कृत और फ़ारसी तथा शस्त्रविद्या में बड़े निपुण हो चुके थे और एक सुयोग्य युवराज के लिए जितने अच्छे गुणों की आवश्यकता है, उन सभों को ये पाचुके थे। महाराज महेन्द्रसिंह बाल्यविवाह के घोर बिरोधी थे; इसलिये अबतक नरेन्द्रसिंह क्वांरे थे और इनकी तेरह चौदह बरस की बहिन का भी विवाह नहीं हुआ था। राजकन्या भी संस्कृत तथा फ़ारसी में और शस्त्रविद्या में अभ्यास रखती थी। उस राजकन्या, अर्थात् नरेन्द्रसिंह की छोटी बहिन का नाम लवङ्गलता (१) था।

पिता के काशी जाने पर नरेन्द्रसिंह को राज्य की चिन्ता के साथ ही साथ और भी सैकड़ों तरह की चिन्ताओं ने घेर लिया था, तौभी वे राजकाज को भली भांति से करते थे; किन्तु बीच में एक बड़ी भारी दुर्घटना हो गई, जिसने नरेन्द्रसिंह को बड़े

---

(१) लवंगलता का हाल इस उपन्यास के उपसंहार भाग अर्थात् दूसरे उपन्यास में लिखा गया है। जिन्हें देखना हो, उस उपन्यास को अलगसे मंगाकर देखें। ग्रन्थ॰ ॥)

झमेले में डाल दिया था, परन्तु धीरज और बुद्धिमानी के साथ उन्होंने उस दुर्घटना का सामना करके उसे परास्त किया।

एक दिन दो व्यक्तियों के साथ अकेले में बैठे हुए नरेन्द्रसिंह राजकाज संबंधी किसी गूढ़ विषय पर बिचार कर रहे थे और उन तीनों के अलावे वहां पर उस समय कोई चौथा न था। उन दो व्यक्तियों में एक तो उनके योग्य मन्त्री माधवसिंह थे और दूसरे दिनाजपुर के राजकुमार कुमार मदनमोहन।

ये तीनों व्यक्ति किसी विषय पर कुछ तर्क बितर्क कर रहे थे कि इतने ही में चोबदार ने आकर पांच पत्र नरेन्द्रसिंह के सामने रख दिए और फिर वहांसे वह चला गया। पहिले नरेन्द्रसिंह ने एक एक करके उन लिफ़ाफ़ों को देखा और फिर उनमें से पहिले एक पत्र को खोल कर पढ़ा और फिर उसे अपने मंत्री के हाथ में दिया। सबके पीछे मदनमोहन ने भी उसे बांचा। वह पत्र 'इष्ट-इण्डिया कम्पनी' के गवर्नरजनरल लार्ड क्लाइव साहब का लिखा हुआ था। पाठकों के मन बहलाव के लिए हम उसकी नकल हिन्दी में नीचे लिख देते हैं;—

"प्रियमित्र महाराज नरेन्द्रसिंह!

"आपका कृपापत्र पाया, समाचार जाना।

"यह जान कर, कि आपकी पूजनीया माता का परलोकबास हुआ और आपके पूज्य पिताजी राज्य को त्याग कर काशीवासी हुए, चित्त को बड़ा खेद हुआ; किन्तु यदि मुझे सन्तोष है तो इस बात से है कि बूढ़े महाराज ने राज्य का भार अपने सुयोग्य पुत्र (आप) के हाथ में दिया है।

"दुराचारी सिराजुद्दौला के अत्याचारों का हाल मुझे भली भांति मालूम है और आप निश्चय जानिए, वह दुष्ट अपनी करतूतों का नतीजा बहुत जल्द पावेगा। आप जानते ही हैं कि उसके कई दर्बारी मेरी ओर आमिले हैं, जिनसे इस बात का पूरा निश्चय किया जा सकता है कि बहुत जल्द सिराजुद्दौला को तख़्त से उतार कर उसकी जगह उसके सेनापति मीरजाफ़रखां को सूबेदार बनाऊं।

"आपने अपने पत्र में जो कुछ लिखा है, उस पर हमारी कौन्सिल ने अपनी बहुत अच्छी सम्मति प्रगट की है और उसके अनुसार कार्रवाइयां भी की जाने लगीं हैं। अन्त में जब कि

मीरजाफ़रखां सूबेदार बनाए जायंगे, आप और आपके मित्रों की जो कुछ स्थावर संपत्तियां सिराजुद्दौला या इसके पहिले के ज़ालिम सूबेदारों ने ज़बर्दस्ती छीन ली हैं, उन्हें लौटा देने के लिए ख़ां साहब ने पक्का एकरारनामा कंपनी को लिख दिया है।

"आपके कृपापत्र पाने और आपसे मिलने की आशा बनी रही।

आपका सच्चा,

क्लाइव।"

इस पत्र के पढ़ने से उन सभों के मुख पर प्रसन्नता छा गई और नरेन्द्रसिंह ने गंभीरता पूर्वक कहा,—

"यदि आज दिन भारत की इतनी दुर्गति न हुई होती, तो आज एक विदेशी मित्र के सामने सहायता के लिये हाथ न फैलाना पड़ता। मैं जहां तक अनुमान करता हूं, एक न एक दिन ये विलायती सौदागर सारे भारतवर्ष में अपना झंडा फहरावेंगे और तब ये लोग यहांवालों के साथ कैसा बर्ताव करेंगे, इसे ईश्वर ही जाने, पर इस समय तो ये लोग अत्याचारी मुसलमानों के ज़ुल्म से यहांवालों को बहुत ही बचा रहे हैं, यह थोड़े आनन्द की बात नहीं है।"

माधवसिंह ने कहा,—"यद्यपि जिस भांति कंपनीवाले इस देश में अपना पैर जमाते जाते हैं, आपके कथनानुसार किसी न किसी दिन ये अवश्य भारत के राजा बन बैठेंगे और यहांवाले फिर भी पराधीन ही रहेंगे, किन्तु एक अत्याचारी राजा की प्रजा बनने की अपेक्षा एक न्यायी राजा का दासानुदास बनना करोड़ गुना अच्छा है, क्यों कि इस बात के लिये यह भारत अंग्रेज़ों का सदा रिनियां बना रहेगा कि इन्होंने अत्याचारियों के हाथ से यहांवालों की जान बचाई। यदि ऐसे अवसर पर अंग्रेज़ न आए होते तो यहांवाले अपना या अपने देश का कल्याण कभी न कर सकते, क्यों कि कई सौ बरस तक मुसलमानों की गुलामी करते करते हिन्दुओं में अब जान ही कितनी बाकी रह गई है!"

मदनमोहन ने कहा,—"ठीक है। यद्यपि हिन्दुस्तान के कई एक बादशाह और नव्वाब ऐसे न्यायपरायण और प्रजावत्सल हो गए हैं कि जिनके प्रातःस्मरणीय नाम को आदर के साथ लेना चाहिए, पर अत्याचारियों की संख्या इतिहासों में इतनी अधिक

है कि उसने प्रातःस्मरणीय, न्यायी मुसलमान-बादशाहों के नाम मानों भूल से दिए हैं! अस्तु, अब इन पत्रों को भी देखना चाहिए कि इनमें क्या लिखा है!”

यह सुन नरेन्द्रसिंह ने दूसरी चिट्ठी खोलकर पढ़ी और उसे भी अपने मंत्री और मित्र को दिखलाई। वह चीठी मीरजाफ़रखां की लिखी हुई थी, जिसकी नक़ल यह है,—

“ जनाब महाराज साहब बहादुर!

“अर्ज़ यह है कि जो शर्त आपसे और मुझसे दर्मियान लाट साहब बहादुर के तय पाई है, वह मुझे बसरोचश्म मंजूर वो क़बूल है। मैं आपका निहायत ममनून एहसान हूं कि आपकी बदौलत जनाब लाट साहब बहादुर मुझ नाचीज़ को सर्फ़राज करना चाहते हैं। इन्शाहअल्लाहताला, अगर उस पाक परवरदिगार के दर्बार में मेरी इस्तदुवा क़बूल हुई तो, खुदा जानता है, मैं आपका हमेशः फ़र्माबर्दार बना रहूंगा। मैं इस बात का एकरार करता हूं कि सूबेदारी की सनद पाते ही मैं आपकी और आपके दोस्तों की उन ज़िमीदारियों को, जिन्हें ज़ालिमों ने बिला वजह ज़ब्त कर लिया है, बिला उज़्र फ़ौरन लौटा दूंगा।

बहुक्मे सदर,
मीरजाफ़र।”

मीरजाफ़र के पत्र से उन लोगों को और भी आनन्द हुआ और उन लोगों के जी से यह बात जाती रही कि,—‘ सभी मुसलमान एक ही तरह के हैं!’ इसके बाद एक तीसरा पत्र पढ़ा गया, जिसे मुर्शिदाबाद से नरेन्द्र के किसी गुप्तचर ने भेजा था। वह एक गुप्त पत्र था, इसलिये यहां पर हम उसका खोलना उचित नहीं समझते।

चौथा पत्र दुष्ट सिराजुद्दौला का था। यद्यपि उस घृणित पत्र की नक़ल कर हम अपने पाठकों का जी दुखाना नहीं चाहते थे, पर क्या करें, लाचार होकर हमें उस भ्रष्ट पत्र की नकल भी करनी पड़ी,—

“ नरेन्द्रसिंह!

“ हमने सुना है कि तुम पोशीदा तौर पर ज़ालिम गोरों की मदद करते हो, यह तुम्हारे हक़ में हर्गिज़ बेहतर नहीं है। तुम इस बात पर यक़ीन करो, कि वह दिन बहुत नज़दीक है, जब कि

मेरे दुश्मन गोरे निहायत ही बेरहमी के साथ क़त्ल किए जावेंगे। चुनांचे अगर तुम अपने जान व माल की ख़ैर चाहते हो तो विलायती गोरों से बिल्कुल ताल्लुक छोड़दो और मुझे अपनी दोस्ती का यक़ीन दिलाओ। अपनी सफ़ाई और दोस्ती के ज़ाहिर करने के वास्ते तुम्हारे लिये यह तरीक़ा सबसे अच्छा होगा कि तुम फ़ौरन अपनी हमशीरा नाज़नीन लवङ्गलता को मेरी ख़िदमत में दाखिल करो, वर्ना तुम यही समझना कि तुम्हारे हयात के दिन पूरे होगए।

तुम्हारा,

नव्वाब सिराजुद्दौला।"

इस पत्र के पढ़ते ही, मारे क्रोध के नरेन्द्रसिंह, माधवसिंह और मदनमोहन की आखें लाल होगईं और उनमें से आग की चिनगारियां झरने लगीं। नरेन्द्रसिंह ने तलवार के कब्ज़े पर हाथ डालकर कहा,--

"हैं! इस पाजी की इतनी बड़ी मजाल!!! क्या, भारत से आज हिन्दुओं का बिलकुल नाम ही मिट गया! तब मेरा नाम नरेन्द्र कि उस बदमाश को इस कमीनेपन का मुह तोड़ जवाब दूं।"

मदनमोहन ने क्रोध से भभककर कहा,--

"जी चाहता है कि अभी उस नालायक की धज्जियां उड़ादूं।"

माधवसिंह ने इतनी देर में अपने क्रोध को आप ही आप ठंढा कर लिया था, इसलिये उन्होंने नरेन्द्रसिंह और मदनमोहन को बहुत कुछ समझा बुझा कर शान्त किया, पर नरेन्द्र ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सिराजुद्दौला को एक छोटासा पत्र अवश्य लिखा। उसकी भी वानगी देखिए,--

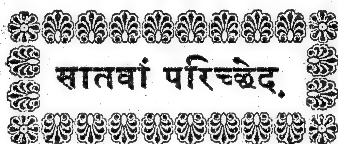
"सिराजुद्दौला,

"महात्माओं ने सच कहा है कि,--'जब मनुष्य के बिनाश होने के दिन आते हैं तो उसकी बुद्धि भ्रष्ट होजाती है;' इसलिये जब कि अंग्रेज़ों से बैर बिसाह कर तू आप ही आप बहुत जल्द बिनष्ट हुआ चाहता है तो ऐसी अवस्था में तुझ पर, तेरे पत्र पर और तेरे घमंड पर मैं केवल थूककर शान्त होता हूं। याद रख, कि तू अपने इस घमंड के कारण कुत्तों की मौत मारा जायगा और तेरी बेगमें बाज़ारों में टके टके को बिकती फिरेंगी।"

पांचवां पत्र काशी से नरेन्द्र के पुरोहित ने लिखा था, जिसकी नक़ल यह है,--

"स्वस्तिश्री चिरायुष्मान्, सकलगुणगणालंकृत, महाराज श्रीनरेन्द्रसिंहवर्म महाशयेषु कोटिशः शुभाशिषां राशयः सन्तुतराम्— आगे समाचार यह है कि कई दिनों से आपके पूज्य श्रीपिताजी की अवस्था बहुतही बिगड़ गई है और काशी के सभी अच्छे अच्छे वैद्यों ने एक प्रकार से जवाब देदिया है, इसलिये जहां तक होसके, आप जल्द आइए।"

इस पत्र ने सभोंके चित्त को डामाडोल कर दिया। इधर सिराजुद्दौला का अत्याचार और उधर पिता की अन्तिम अवस्था; दोनों ओर संकट!!! किन्तु बहुत कुछ सोच विचार करने पर राज्य और लवङ्गलता की रखवाली का बोझ माधवसिंह तथा मदन-मोहन पर डालकर नरेन्द्र ने घोड़ों की डांक से उसी समय काशी को प्रस्थान किया।



हर्ष विषाद।

"अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं,
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।"

बीरेन्द्र के साथ कुसुम को उसके घर के द्वार तक पहुंचा कर, फिर हमने अभी तक इस बात की सुध न ली कि घर पहुंचकर, कुसुम और बीरेन्द्र में क्या क्या बातें हुईं और बीरेन्द्र ने कमलादेवी को किस अवस्था में देखा। यद्यपि इस विषय में हम अवश्य अपराधी ठहराए जासकते हैं, किन्तु क्या करें, लाचारी ने हमें अभी तक कमलादेवी का हाल लिखने के लिये मौका ही नहीं दिया था। अस्तु, तब न सही तो अब सही! सुनिए,—

बहुत दिनों पीछे कुसुम के साथ बीरेन्द्र को देखकर चम्पा बहुत ही खुश हुई और ऐसा होना उसके लिये कोई अस्वाभाविक न था; क्यों कि उसने कुसुम को गोदी खिलाया था और वह उसे अपने पेट की बेटी से बढ़कर प्यार करती थी। सो, चम्पा ने द्वार

खोलते ही बीरेन्द्र को देख बड़ी खुशी के साथ आगे बढ़कर कहा,—

"अहा! आप आगए? बड़ी बात हुई जो आप आए। ठहरिए, मैं मां जी से आपके आने की खबर करती हूं।"

यों कहकर उसने दालान में बीरेन्द्र के बैठने के लिये चटाई बिछादी और तब वह उनके आने की ख़बर सुनाने के लिये कमला देवी की कोठरी की ओर चली। कुसुम भी उसके पीछे पीछे अपनी मां के पास गई।

ज्यों ही चम्पा ने जाकर बीरेन्द्र के आने का समाचार कमला-देवी को सुनाया, त्यों हीं वह एकबार ज़ोर से चीख मारकर बेहोश होगईं; जिसे देख चम्पा और कुसुम ज़ोर से रो उठीं और बीरेन्द्र को दौड़कर उसी कोठरी में जाना पड़ा। उन्होंने जाकर देखा कि,—"एक पुरानी टूटी हुई खाट पर, जिस पर एक बहुत ही मैली और फटी हुई सुजनी बिछी है, कमलादेवी बेहोश पड़ी हैं और उनके पेट पर सिर रक्खे हुई चम्पा और कुसुम रोरही हैं! कोठरी में आले पर एक दिया टिमटिमा रहा है और दो चार मामूली बरतनों के अलावे और वहां पर कुछ भी नहीं है!"

दरिद्रता के ऐसे भयानक दृश्य को देखकर बीरेन्द्र का कलेजा मुंह को आने लगा और बड़ी कठिनाई से उन्होंने अपने को सम्हाला। फिर उन्होंने चम्पा और कुसुम को शान्त करके कमलादेवी के पास से हटाया और उनके मुख पर पानी के छींटे देदे कर बड़ी कठिनाई से उन्हें होश कराया।

बीरेन्द्र के एकाएक गायब होने के थोड़े ही दिनों बाद से ही कमलादेवी ने खाट पकड़ी थी और तब से वह बराबर बीमार ही चली आती थीं; सो आज एकाएक बीरेन्द्र का आना सुनकर मारे खुशी के वह इतने ज़ोर से चीख उठीं कि बेहोश होगईं और बड़ी कठिनाई से फिर होश में लाई गईं।

निदान, जब वह होश में आईं तो बीरेन्द्र ने उनका चरण छूकर प्रणाम किया। कमला ने बहुत चाहा कि उठें, पर बीरेन्द्र ने उन्हें उठने न दिया और उनके पास बैठकर कहा,—

"मां! आपका जी कैसा है?"

कमला ने आंसू ढलकाते ढलकाते कहा,—

"बेटा! जैसा तुम देखते हो। हा! इतने दिनों तक अपनी इस

अनाथिनी मां को छोड़कर तुम कहां अन्तर्धान रहे ? क्यों, बेटा ! जिसे तुम ' मां ' पुकारते थे, उसकी दशा पर तुम्हें तनिक भी दया न आई ? बेटा, बीरेन्द्र ! यह बात मैं कुछ उलाहने के तौर पर नहीं कहती, बरन केवल हृदय का उद्वेग ही मुझसे ऐसी बातें कहला रहा है ! अच्छा, जो कुछ हो, पर इस समय तुम भले अवसर पर आगए; क्यों कि जहां तक मैं समझती हूँ, अब मेरे दिन पूरे हुए ही समझने चाहिएं । ऐसे समय में तुम्हारा आना बहुत ही अच्छा हुआ, क्योंकि तुम्हारे देखने की जो इच्छा मुझे बेचैन कर रही थी; उसने तुम्हें देखकर मेरा पिंड छोड़ा; इस लिये अब मैं सुख से मर सकूंगी और कुसुम के लिये मुझे अन्त में चिन्ता के आधीन होकर न मरना पड़ेगा !"

इससे अधिक वह और कुछ न कह सकीं, क्यों कि निर्वलता के कारण उनका गला रुंध गया और दम फूलने लगा था। उनकी बातों ने बीरेन्द्र के हृदय को मथ डाला और उन्होंने बड़ी कठिनाई से कलेजा थामकर कहा,—

" मां ! मेरा अपराध क्षमा कीजिए । हा ! मेरी असावधानी ही से आपको यहां तक कष्ट भोगने पड़े । न जाने इस पातक से मुझे नरक में भी स्थान मिलेगा या नहीं ? किन्तु हा ! मैं अपनी विपत्ति का हाल क्या सुनाऊं कि जिसके कारण लाचार होकर मुझे आप की सेवा करने का अवसर नहीं मिला और बिना आपसे आज्ञा लिये ही यहांसे भागना पड़ा ।"

कमलादेवी ने धीरे धीरे अपने जी को ठिकाने करके कहा;—

" नहीं, बेटा ! ऐसी बात मुंह से न निकालो, तुम सदा फूलो, फलो, प्रसन्न रहो; इसीसे मेरी आत्मा को, चाहे वह किसी लोक में जाय, सुख मिलैगा । बीरेन्द्र ! तुमने जहांतक चाहिए, मेरी सेवा करने में कोई बात उठा न रक्खी थी, पर क्या करूं, मेरा भाग्यही ऐसा खोटा है कि उसने मुझे हरतरह से मिट्टी में मिला छोड़ा । यदि मैं यह जानती कि तुम्हें कष्ट होगा तो मैं अपने जी का हाल या उबाल कभी तुमसे न कहती । ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, अब तुम यह बतलाओ कि तुम्हें किस विपत्ति से सामना करना पड़ा था ? "

इतना कहते कहते वह रुक गईं, पर उनकी आंखों का आंसू

न थम्हां। बीरेन्द्र ने उनका आँसू पोंछ दिया और यों कहना आरम्भ किया,—

" मां! नब्बाब सिराजुद्दौला, मेरे प्राण का गाहक बन बैठा है! यदि उसका दांव लगे तो वह मुझे कच्चा ही खा जाय! अस्तु, मैं कई कारणों से,—या आपसे खुलासा ही क्यों न कह दूं—कि 'इष्ट-- इण्डिया कम्पनी' के लाट साहब का गुप्तचर होकर—मैं यहां भेस बदलकर रहा करता और नब्बाब के अत्याचारों का समाचार लाट साहब के पास भेजा करता था। उन्हीं दिनों मैंने बाज़ार में फूलों की माला बेचती हुई कुसुम को देखा था और यहां आकर आपके दर्शन किए थे। यद्यपि मैं यहां पर बहुत ही गुप्त रीति से रहता था, पर एक मेरे मित्ररूपी शत्रु ने, जिसका हाल मुझे अब मालूम होगया है, और उस पतित को उसकी करनी का फल भी भरपूर देदिया गया है, मेरे यहां रहने का हाल नब्बाब से कह दिया, जिसे सुनकर उसने मानों चांद का टुकड़ा मुट्ठी में पा लिया और मुझे फंसाने या मार डालने का षड़यन्त्र रचने लगा; किन्तु मां! आपके चरणों के आशीर्वाद से, मैंने यह खबर मुसलमान कुलभूषण महात्मा मीरजाफ़रखां से पाई और वह एक ऐसा मौका था कि जिसने मुझे यहां पल भर भी ठहरने का मौका न दिया और बिना आपके दर्शन किए ही मुझे यहांसे चले जाने के लिये लाचार किया। निदान, मैं आपकी सेवा का भार अपने उसी मित्ररूपी शत्रु पर देकर, जिसने कि मेरे यहां रहने का हाल नब्बाब से कहा था और जिस हाल को मैंने पीछे से जाना था. जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, मैं यहांसे चला गया। आखिर, उस कृतघ्न विश्वासघाती को पूरा पूरा दण्ड तो नारायण देगें, पर हां, इतना मैंने अवश्य उसके लिये दण्डविधान कर दिया है कि जो उसे मिट्टी में मिलाने के लिये काफ़ी होगा और जिसका हाल वह चाण्डाल तब जानेगा, जब मैं ही उसे यह बात जनाऊंगा कि,—रे,रे चाण्डाल! तुझे तेरी कृतघ्नता, विश्वासघात और मित्रद्रोह का, यह इनाम दिया गया!!!

" इसके अलावे मैं अपने दुर्भाग्य की कहानी कहां तक कहूं! यहांसे जाकर घर में भी मुझे सुख न मिला, क्योंकि इधर तो नब्बाब मुझ पर दिन दिन अत्याचार करने लग गया और उधर

काशी से पिता की अन्तिम दशा का समाचार मुझे मिला, जिसे पाते ही मैं तुरन्त काशी चला गया और वहां जाकर पिता को बहुत ही मंद अवस्था मैंने देखी। निदान, कई दिन पीछे पिता ने वैकुण्ठ को प्रस्थान किया, जिससे जो कुछ दुःख मेरे हृदय को सहना पड़ा, उसे किसी तरह भी मैं नहीं कह सकता।"

कहते कहते बीरेन्द्र की आंखों से चौधारे आंसू बहने लगे, कुसुम तथा चम्पा की आंखों से भी नदियां उमड़ने लगीं और कमलादेवी की तो उस समय वह अवस्था थी कि जिसका चित्र कलम द्वारा किसी तरह भी नहीं उतारा जा सकता। निदान, थोड़ी देर ठहरकर बीरेन्द्र फिर कहने लगे,—

"मां! पिता का शोक कैसा दुखदाई होता है, इसे वे ही जान सकते हैं, जिन्होंने कभी इस विपत्ति को भोगा हो! आखिर, उस समय मेरे पुरोहितजी ने मुझे बहुत कुछ धीरज दिलाया और मैं पिता का श्राद्ध आदि कर्म्म करके अपने चित्त को शान्त करने के लिये श्रीवृन्दावन की यात्रा को चला गया; किन्तु दो महीने से अधिक हुए कि मुझे श्रीवृन्दावन में मीरजाफ़रखां का एक पत्र मिला, जिसे पाते ही मैं वहांसे अपने देश को लौटा। उस पत्र में मीर-जाफ़र खां ने बड़ा भयंकर संबाद लिखा था, अर्थात् मेरे पीछे मेरी बहिन को दुराचारी सिराजुद्दौला लूट ले गया था, किन्तु मेरे पहुंचने के पहिले ही मेरे मित्र मदनमोहन ने बहिन का उद्धार किया और उसके धर्म्म और सतीत्व की बड़ी वीरता से रक्षा की। यह ख़बर पाते ही मैं घर आया और बहिन से मिलकर और भली भांति कई तरह के प्रबन्धों को करके आपके दर्शन के लिए घर से चला और आजही यहां पहुंचा हूं। यद्यपि आपके दर्शन मिलने से मुझे बड़ा संतोष हुआ, किन्तु साथ ही इस बात का अत्यन्त दुःख भी हुआ कि मैं आपको इस अवस्था में देख रहा हूं!"

एक तो कमलादेवी मानसिक और शारीरिक व्याधि से मृत्यु के निकट पहुंच ही चुकी थीं; उस पर बीरेन्द्र का हाल सुनकर उन्हें इतना खेद हुआ कि जिसका लिखना बहुत ही कठिन है। बीरेन्द्र का हाल सुनकर उन्हें अपने ऊपर बीती हुई घटनाएं एक एक करके याद पड़ने लगीं, जिससे उनकी वर्त्तमान दशा ने और भी भयकर रूप धारण किया! उस समय कुसुम दूसरे घर में मां के लिये

औषधि बनाती थी और चम्पा घर के काम धंधे में लगी हुई थी, सो जब बीरेन्द्र का हाल सुनकर कमलादेवी फिर बेहोश होगईं, तब बीरेन्द्र ने घबड़ा कर आवाज़ दी, जिसे सुन चम्पा और कुसुम दौड़ आईं और थोड़ी देर में कमलादेवी की मूर्छा दूर हुई। जब धीरे धीरे वह कुछ स्वस्थ हुईं, तब उन्होंने कुसुम को इशारे से अपने पास बुलाया और उसका हाथ बीरेन्द्र के हाथ में देकर टूटे फूटे शब्दों में कहा,—

"बेटा!—बीरेन्द्र—मैं—आज—कुसुम को—तुम्हारे—हवाले-कर—निश्चिन्त—हुई—अब—मैं—चली-"

इतना कहते कहते, वह ज़ोर ज़ोर से सांस लेने लगीं, जिसे देख बीरेन्द्र बहुत ही घबड़ाए और उन्होंने इस बात का निश्चय कर लिया कि,—'अब जो कुछ होना है, थोड़ी ही देर में, हुआ चाहता है।' उस समय कुसुम, बीरेन्द्र और चम्पा की आंखों से चौधारे आंसू बह रहे थे, पर बीरेन्द्र ने अपने को बहुत जल्द शांत किया और कुछ सोचबिचारकर उन्होंने थोड़ी देर के लिये वहांसे कुसुम और चम्पा को टाल दिया और अपना असली हाल कमलादेवी से, जिसे वह अब तक नहीं जानती थीं, कह सुनाया। बीरेन्द्र का सच्चा परिचय पाकर कमलादेवी बहुत ही प्रसन्न हुईं और उनके मुख पर आनन्दमयी स्वर्गीय ज्योति की छाया क्रीड़ा करने लगी। तब उन्होंने धीरे से बीरेन्द्र को आशीर्वाद दिया और आंखें बंद करके ऊर्ध्वश्वास खींचना प्रारंभ किया। यह देख, बीरेन्द्र उठे और कमला-देवी की देखभाल करने का भार कुसुम और चम्पा को दे, वैद्यराज के बुलाने के लिये चले गए। रात उस समय आधी से ऊपर पहुंच चुकी थी।

आध घंटे के भीतर वैद्यराज को लेकर बीरेन्द्र लौट आए और वैद्य ने भली भांति कमलादेवी को देखा। उस समय मुर्शिदाबाद में चन्द्रशेखरजी बड़े नामी वैद्यों में गिने जाते थे, सो उन्होंने भली भांति कमलादेवी को देखकर, धीरे से बीरेन्द्र के कान में कहा,—"महाशय! अब आप क्यों व्यर्थ वैद्यों के फेर में पड़े हुए हैं? अब इनमें रह क्या गया है कि जिसकी चिकित्सा होगी?" यों कह कर चन्द्रशेखरजी बिना फ़ीस लिए ही चले गए और कमलादेवी ने आंख खोल, खाट से नीचे उतार लेने का इशारा किया, जिसे समझ और

अपने कलेजे पर पत्थर रखकर बीरेन्द्र ने चम्पा की सहायता से कमलादेवी को लाकर आंगन में कुश की चटाई पर डाल दिया और उनके मुख में तुलसी, सोना और श्रीठाकुरजी का चरणोदक दे, कान के पास मुंह लगाकर हरिनाम सुनाना प्रारंभ किया। थोड़ीही देर में कमलादेवी कुसुम तथा बीरेन्द्र की ओर देखते देखते सतीलोक को चलदीं।

उस समय बीरेन्द्र, कुसुम और चम्पा की क्या अवस्था हुई और उन सभोंने कैसा घोर बिलाप किया, भुक्तभोगी जन इसका अनुभव स्वयं कर सकते हैं। थोड़ी देर में बीरेन्द्र ने अपने तईं आप सम्हाला और बज्र सा कलेजा करके बहुत कुछ समझा बुझाकर कुसुम और चम्पा को कुछ-कुछ शान्त किया। तड़का होगया था, इतनेही में पच्चीस तीस आदमी कुसुम के दर्वाज़े पर आखड़े हुए। ये सब बीरेन्द्र के नौकर चाकर थे, जिन्हें वे बुलाते आए थे, जब कि वे कविराज के बुलाने के लिये गए थे।

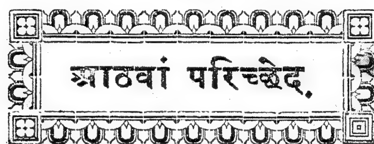
निदान, शवयात्रा की तयारी होने लगी और कई आदमियों को कुसुम तथा चम्पा की हिफ़ाज़त के लिये छोड़, बीरेन्द्र ने स्वयं जाकर कमलादेवी के शव का संस्कार किया।

अब बीरेन्द्र के सिवा कुसुम को धीरज देनेवाला संसार में और कोई न रहा, इसलिये वे कुसुम और चम्पा को अपने डेरे पर लेगए और हर तरह से कुसुम को धीरज देने और उसके शोक को शान्त करने का प्रयत्न करने लगे। यह बहुत अच्छा हुआ कि बीरेन्द्र बहुत जल्द कुसुम को अपने डेरे पर लेगए, क्यों कि जिस दिन वे कुसुम को उसके घर से अपने डेरे पर ले गए, उसी रात को नव्वाब के आदमी कुसुम को पकड़ ले जाने के लिए उसके घर में घुस आए थे, पर उन कंबख़्तों को अपना सा मुंह लेकर खाली हाथों वापस चले जाना पड़ा।

नव्वाब सिराजुद्दौला को किसी तरह यह मालूम हो गया था कि,-'उस मतवाले हाथी को किसने मारा है और हाथी को मार कर जिस शख़्स ने उस लड़की की जान बचाई है, वह उस लड़की के साथ क्या ताल्लुक रखता है और वह लड़की कहांपर रहती है।' इसी ख़बर को पाकर उस दुष्ट ने कुसुम और उसके रक्षक के पकड़ने के लिये आदमी भेजे थे, पर उन सभोंको खाली हाथ ही

लौटना पड़ा। जहांतक हम समझते हैं बीरेन्द्र ने भी कुछ सोच समझ कर ही, कुसुम को उसके घर से हटा लिया था।

हाय! मिठाई और पथ्य की सारी सामग्री, जो बीरेन्द्र लाए थे, ज्यों की त्योंही पड़ी रही और कमलादेवी कूच कर गईं। उनके दुःख में चंपा अपनी मांदगी को भूल गई, या दया करके रोग हो ने उस बिचारी का पिंड छोड़ दिया था।



आठवां परिच्छेद.

आशा आभास।

"रत्नं समागच्छति काञ्चनेन।"

समय सदा बदलता रहता है और उसकी अदला बदली के साथही साथ लोगों के दुःख और सुख भी अदल बदल हुआ करते हैं। चाहे काल कहो, या बेला, अथवा समय; किन्तु हैं ये तीनों एक ही। आज कमला देवी को सतीलोक सिधारे छः महीने के लग भग बीत गए, इतने ही दिनों में बीरेन्द्र के कारण कुसुम का मातृशोक भी बहुत कुछ जाता रहा और बराबर बीरेन्द्र के पास रहने से उसके चित्त ने बहुत कुछ धीरज पाया। यद्यपि अभी तक बीरेन्द्र उसे अपने घर न लेजाकर मुर्शिदाबाद ही में छिपाकर रक्खे हुए थे कि जहांका पता नव्वाब तो क्या, उसकी रूह को भी लगना कठिन था; अर्थात यों कहना चाहिए कि बीरेन्द्र ने कुसुम को बहुत ही गुप्त रीति से अज़ीमगंज में लाकर एक बाग़ के अंदर एक बड़े आलीशान मकान में रक्खा था और पहरे चौकी तथा दास दासियों का पूरा पूरा प्रबंध भी कर लिया था; इसलिये कभी कभी बीरेन्द्र कुसुम से दस पांच दिन के लिये अलग होकर अपने घर भी चले जाया करते थे, पर जै दिन कुसुम के साथ वे नहीं रहते, वह बड़ी कठिनाई से उतने दिनों को बिताती थी।

यद्यपि अब कुसुम को किसी बात का कष्ट न था, पर इस चिन्ता ने उसे बहुत ही व्याकुल कर रक्खा था कि,–' देखें, ये मुझे

अपनाते हैं या नहीं; ' क्यों कि बीरेन्द्र इस ढंग की कोई बात अब कुसुम से नहीं करते थे कि जिससे वह यह बात जान सकती कि,—'हां, ये मुझे अवश्य अपनावेंगे। '

इसका मुख्य कारण यही था कि कुसुम को माता के शोक में डूबी हुई जानकर बीरेन्द्र ने प्रेम के ढंग की बातें करनी उससे छोड़ दी थीं, जैसा कि वह पहिले, करते थे; यही कारण था कि कुसुम ने उनके मन के भेद को न जानकर अपना मन माना अर्थ लगा लिया और मनहीमन वह यों सोचने लगी कि,—' क्या कारण है कि ये जैसी प्रेम की बातें मुझसे पहिले किया करते थे, वैसी अब नहीं करते; तो क्या अब ये मुझे अपने चरणों में स्थान न देंगे !!! '

किन्तु, यहां पर कुसुम ने बड़ी भूल की और उसके मन ने उसे भरपूर धोखा दिया; क्यों कि उसके अलावे बीरेन्द्र के लिये सुख की कोई और बस्तु संसार में थी ही नहीं।

अहा ! प्रेम ! तू धन्य है !!! तुझे यदि संसार, जीवन, हृदय और समाज का सार कहें तो अनुचित न होगा।

महर्षियों ने, जो प्रेम को परम धर्म और परमेश्वर का हृदय कहा है, सो बहुत ही ठीक कहा है। यह ऐसा ही है, इसकी उपमा यही है। जो लोग प्रेम के साथ–शुद्ध अशुद्ध, कृत्रिम, वास्तविक, वैध, अवैध आदि विशेषणों का प्रयोग करते हैं, वे बहुत ही भूलते हैं; क्यों कि प्रेम निर्विशेषण है, वह अपना विशेषण आप ही है। प्रेम, जब कि जगदीश्वर का हृदय है तो वह कदापि अशुद्ध, कृत्रिम, अवैध आदि नीच विशेषणों का विशेष्य हो ही नहीं सकता, क्यों कि विशेषणवान् प्रेम, ' प्रेम ' कहला ही नहीं सकता। यह प्रेम तो केवल लोकाचार वा पाशवाचारमात्र है; और जो प्रेम है, उससे संसार वा समाज का मंगल छोड़ कर अमंगल कभी नहीं होता, और जिससे अनिष्ट छोड़कर इष्टसिद्धि कभी नहीं होती, वह कदापि प्रेम कहला ही नहीं सकता। अतएव, हे प्रेम ! और हे प्रेमदेव ! ! हम तुम्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं और तुमसे यही भिक्षा मांगते हैं कि तुम हमारे हृदय को प्रलय के अन्त में भी त्याग मत करना।

इस प्रेम की लीलाओं का अंत नहीं, वैसे ही इसका आदि और मध्य भी नहीं है। यह कब, कहां, क्या और कैसी कैसी लीलाएं करने लगता है, इसका भेद पाना बिना उसीकी कृपा के कठिन

ही नहीं, बरन असम्भव भी है। देखिए, इस समय वह खिलाड़ी प्रेम कुसुम को कैसे कैसे खेल खिला रहा है !!! कभी कुसुम बीरेन्द्र पर भरोसा करके उन्हें अपना सर्वस्व जानकर मारे खुशी के फूली अंगों नहीं समाती है और कभी वह निराशा से बिकल होकर चारों ओर अंधकार ही अन्धकार देखती और आप ही आप अपने मन का खून कर डालती है !

एक दिन ठीक दोपहर के समय कुसुम अकेली बाग में एक लताकुंज के अंदर संगमर्मर की चौकी पर बैठी हुई फूलों का गजरा बनारही थी। थोड़ी देर तक तो वह चुपचाप फूल गूंथती रही फिर एकाएक उसने एक ठंडी सांस खैंची और आपही आप यों कहना आरंभ किया,—

"हा, परमेश्वर! इस आशा-निराशा ने तो मेरे कलेजे को बेतरह मथ डाला! कुछ समझ नहीं पड़ता कि अंत में क्या होना है !!! इस अभागे मन को मैं कितना समझाती हूँ; पर यह निगोड़ा इसकदर मचला हुआ है कि मेरी एक नहीं सुनता। भला, कहां मैं और कहां वे! मुझमें और उनमें आकाश पाताल का अंतर है, ऐसी अवस्था में मेरी आशा क्या पागलपन से ख़ाली कही जा सकती है? और फिर मेरे ऐसे पाटी से भाग कहां हैं !!! खैर, न सही, पर यह तो मेरे बस कीही बात है कि,— 'मैं सदा कुमारी रहकर अपने जिंदगी के दिन बिता दूं;' क्योंकि छिन भर के सुख-नहीं नहीं, घोर पाप—के लिये इस शरीरको नरक में डालना, मुझसे कभी न होगा। हाय! कुछ नहीं समझ पड़ता कि उनके मन में क्या है! क्यों कि जैसा वे पहिले मुझपर अपना प्रेम प्रगट करते थे, मां के मरते ही मानों उनके मन का भाव कुछ बदला हुआ सा मालूम देता है। यद्यपि वे मुझे प्रसन्न रखने के लिये लाख तरह के उपाय करते रहते हैं, पर फिर भी मैं उस पहिले के ऐसे प्रेम की झलक उनमें नही पाती। भगवान जाने, उनके मन में क्या है !!! हाय! कैसी दुराशा है! वामन होकर चांद के पकड़ने के लिये हाथ उठाना, इसीको कहते हैं। सैकड़ों बार मैंने यह चाहा कि उनसे एक दिन साफ़ साफ़ पूछूं कि,—'आपकेमन में क्या है?' पर जब चार आँखें होती हैं, तो मारे लज्जा के गला रुंध जाता है और कुछ कहते सुनते नहीं बनता। अच्छा, न सही, तो जब कि वे मेरे

मन को छीन कर अब उसका बदला चुकाने के समय यों आना-कानी कर रहे हैं तो फिर मैं अब उनके गले का हार बन कर क्यों व्यर्थ यहां पड़ी रहूँ और क्यों न यहांसे झटपट अपना मुंह काला करूं!!!"

इतनेही में पीछे से आकर किसीने उसकी आंखें बंद करलीं और बहुतही धीरे से कहा,—

"बूझो तो कौन है?"

इतनी देर तक कुसुम दुचित्ती होकर आपही आप अपना मन-माना राग अलाप रही थी, पर ज्योंही उसकी आंखें किसीने मीच लीं, त्योंही वह चिहुंक उठी और मुस्कुरा कर बोली,–

"सिवा उस महानुभाव महात्मा के और कौन होगा, जिस देवता ने मेरी बड़े गाढ़े समय में सब भांति से वैसी रक्षा की है, जैसी कोई अपने सगे संबंधी की भी न कर सकेगा।"

जिन्होंने कुसुम की आंखें मूंद ली थीं, वे महात्मा बीरेन्द्र थे; सो कुसुम के उस ढंग के उत्तर को सुन कर वे उसके सामने आए और संगमर्मर की दूसरी चौकी पर बैठकर बोले,—

"क्यों, कुसुम। क्या मेरा मुंह ऐसेही जवाब के लायक था, जैसा कि तुमने दिया! यदि मैं यह जानता होता कि अब तुम्हारा चित्त मुझसे उचट कर कहीं और ही ठौर गया हुआ है तो मैं कभी तुम्हारी आंखें न मींचता।

बीरेन्द्र की बातों से कुसुम के मुखड़े पर गहरी लाली छा गई, उसने लज्जा से सिमट कर अपनी आंखें नीची करलीं और कुछ कहा सुना नहीं। बीरेन्द्र ने फिर कहा,—

"क्या, अब मेरी बातों के जवाब देने में भी तुम्हें रुकावट है?"

कुसुम ने सिर झुकाए हुए कहा,–"आप यह क्या कह रहेहैं?"

बीरेन्द्र ने कहा,—"जी, मैं यह कह रहा हूं कि आप यहां पर बैठी हुई अभी आप ही आप क्या क्या कह रही थीं?"

कुसुम,—"हाय! मुझे आप 'आप' क्यों कहते हैं?"

बीरेन्द्र ने कहा,—"जी यह आपके 'आप' का जवाब है!"

कुसुम,—"भला, आपकी और मेरी क्या बराबरी है? कहां आप और कहां मैं!"

बीरेन्द्र,—"ठीक है, अब मैंने आपके चित्त के भाव को समझा

इसी लिये तो अभी आप, आप ही आप न जाने क्या क्या अनाप शनाप बक रही थीं। आप यह न जानें कि,—'मुझे किसी बात की कुछ खबर ही नहीं है।' मैंने वे सारी बातें अभी अपने कानों से सुनी हैं, जो आप; आप ही आप कह रही थीं; इसलिये मैं यह जानना चाहता हूं कि वह कौनसा बढ़भागी पुरुष है, जिसने बरजोरी आपके मन को छीन कर आपके सुकुमार हृदय पर इतनी गहरी चोट पहुंचाई है? यदि आप मुझे अपना कुछ भी हितू समझती हों तो लाज संकोच छोड़ कर उस भाग्यवान का पता जल्द बतलाइए तो मैं अभी उसे, चाहे वह जहां पर हो, ढूंढ़ निकालूं और आपको उसके हाथ सौंप कर सदा के लिये सुचित्त हो जाऊं और जगदीश्वर को कोटि कोटि प्रणाम इसलिये करूं कि उस दयामय परमात्मा ने सचमुच मुझ अधम के हाथ से एक अनाथिनी बालिका का उद्धार कराया।"

कहते कहते बीरेन्द्र की आंखें भर आईं, पर उधर कुसुम का तो बहुत ही बुरा हाल था; अर्थात् बीरेन्द्र के मुख से निकलते हुए एक एक शब्द उस बिचारी (कुसुम) के हृदय के साथ वह काम कर रहे थे, जो नमक जख्म के साथ करता है। बीरेन्द्र की बातों से कुसुम ने समझ लिया कि,—'इन्होंने छिप कर मेरी सारी बातें सुनलीं;' इस लिये वह बहुत ही लज्जित हुई, पर जब बीरेन्द्र उसके कलेजे में छुरी चुभोने लगे तो वह उन मर्मभेदी शब्दों से इतनी घायल हुई कि उसके कलेजे का खून पानी होकर उसकी आंखों से बहने लगा। उसकी यह दशा देख बीरेन्द्र से न रहा गया और चट उन्होंने उसका आंसू पोंछ दिया और यों कहा,—

"कुसुम! आज तुम्हें क्या होगया है, जो आप भी इतनी दुखी होती हो और दूसरे को भी कष्ट पहुंचाती हो।"

आखिर, बिचारी से न रहा गया और उसने बीरेन्द्र की ओर तिरछौंहें देख कर कहा,—"तुम्हें इस समय यहां किसने बुलाया है?"

बीरेन्द्र ने मुस्कुराकर कहा,—"यह बात तो तुम्हेंअपने मन से ही पूछनी चाहिए। मैं तो केवल इतना ही जानताया कह सकता हूं कि जहां परकुसुम खिल रहा हो, वहां पर रस का लोभी भौंरा न पहुंचे, यह कभी हो ही नहीं सकता।"

कुसुम ने सिर झुकाए हुए मुस्कुराकर कहा,—"पर उस हरजाई भौंरे को इस बात पर जरा भी हया नहीं आती, कि वह कली कली का रस लेता फिरता है और चंपा की ओर तो भूलकर भी नहीं देखता।"

बीरेन्द्र ने मुस्कुराकर कहा,—"इसमें भौंरे का कुछ दोष नहीं है और यदि कुछ है तो वह बिल्कुल कुसुम ही का; क्योंकि उस बिचारे ने जब कि अपनी सारी हया कुसुम के हवाले कर दी तो फिर अब बेहए भौंरे का दोष है या हयादार कुसुम का!!! और फिर चंपा को भौंरे ने छोड़ रक्खा है, या उसे चंपा ने ?"

यह एक ऐसी बात थी कि जिसे कुसुम अपने जी को हज़ार रोकने पर भी न रोक सकी और खिलखिला पड़ी; और उसके निराश चित्त में एकाएक आशा की नई लता लहलहा उठी। बीरेन्द्र के चित्त के भाव को न समझ कर, जो उसने इतनी ठोकरें खाई थीं; इसके लिये उसने मन ही मन अपनी हार स्वीकार की और सचमुच हाथ बढ़ाते ही उसने चांद को पा लिया! फिर उसने बात उड़ाने के मिस से कहा,—

"हां, तुम कल रंगपुर जाने की बात जो कहते थे, सो कब जाओगे?"

बीरेन्द्र ने इस प्रश्न के ढंग को समझ कर परिहास से कहा,—

"क्या, अब तुम्हें मेरा यहांका रहना भो नहीं सुहाता!"

इतना सुनते हो कुसुम झल्ला उठी और बोली,—"हाय, राम! तुम तो अब इस कदर मेरी बातों को छीलने लग गए हो कि मुझे बोलना भी कठिन होगया है।"

बीरेन्द्र ने कहा—"अच्छा, तो बहुत दिनों तक तुम्हें यह कठिनाई न झेलनी पड़ेगी। सुनो, कुसुम! मैं रंगपुर जिस काम के लिये जाया चाहता हूं, उसमें पहिले तुमसे सम्मति ले लेना बहुत आवश्यक है। देखो, तुम एक बड़े प्रभावशाली महाराज को कन्या हो। यद्यपि दुर्दिन ने तुम्हारे या तुम्हारे कुटुम्ब के साथ घोर अत्याचार करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी, किन्तु फिर भी, जबकि तुम्हारी माता तुम्हारा भार मुझे देगई हैं, तो, मुझे यह उचित है कि,—"जैसे होसके, तुम्हें किसी राजा की रानी बनाऊं और तब जानूं कि,—"आज मैंने अपने एक प्रधान कर्त्तव्य का पालन भली

भांति किया।' मेरी इच्छा है कि तुम्हारा विवाह रंगपुर के राजकुमार (अब महाराज) के साथ कर दूं, क्योंकि वे सब भांति से तुम्हारे योग्य हैं। वहां तुम बड़े सुख से रहोगी और तुम्हें सुखी देखकर मेरा हिया भी ठंढा होगा; और सबसे बढ़ कर सुख की बात तो तुम्हारे लिये यह होगी कि नरेन्द्रसिंह अभी तक क्वांरे हैं और शायद तुम्हारे ऐसी स्वर्गीय देवी को पाकर वे फिर दूसरा विवाह करने की जन्मभर इच्छा ही न करें।"

बीरेन्द्र की इन बातों ने कुसुम की लहलही आशालता पर मानो वज्र घहरा दिया। अब तक वह बिचारी जिस बात के लिये कभी आशा करती थी और कभी निराशा; उस संशयात्मक आशा को बीरेन्द्र की बातों ने मानों बिल्कुल मिटा ही दिया। अब बतलाइए, पाठक! अनाथिनी कुसुम क्या करे? जो कुसुम बीरेन्द्र के अलावे और किसीको चाहती ही नहीं और जो बीरेन्द्र के न मिलने से अपनी जिन्दगी को जन्मभर कुमारी ही रह कर बिता देने के लिये मुस्तैद है; भला, बीरेन्द्र की बातों से उसकी क्या दशा हुई होगी! अस्तु, सुनिए,—उसने बीरेन्द्र की बातों से लाल पीली हो, क्रोध से भभक और त्योरी चढ़ाकर कहा,—

"भौंरे की बेहयाई की बात, जो तुमने अभी कही थी, वह अब मुझे सच्ची जान पड़ी। सुनो जी! मरती बेला मां मेरा हाथ तुम्हें पकड़ा गई हैं, इसलिये अब तुम्हें इस बात का पूरा अधिकार है कि जिसे तुम चाहो, मुझे दे डालो; पर याद रक्खो, मेरे इस शरीर के दे डालने का अधिकार तुम्हें अवश्य है, कुछ मुझे जीती रखने का नहीं; क्यों कि इस बात को तुम निश्चय जानो कि यदि तुमने मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे विवाह के लिये उद्योग किया तो उसके पहिले ही मैं अपनी जान दे डालूंगी, या तुम्हारे घर से कहीं अपना काला मुंह कर जाऊंगी; क्यों कि मेरी यह दृढ़ इच्छा है कि मैं बिवाह न करके सदा कुमारी ही रहकर अपनी जिंदगी बिता दूं।"

कहते कहते कुसुम की आंखों से चिनगारी झड़ने लगी और मारे क्रोध के वह थर थर कांपने लगी। उसकी इस अवस्था के मर्म को भली भांति समझ और मुस्कुरा कर बीरेन्द्र ने कहा,—

"सदा कुमारी रहने की बात तो तुम बिल्कुल झूठ कह रही हो। अभी जब कि तुम आप न जाने अपने किस चितचोर को

आप ही आप उलाहना देरही थीं, तो मैंने तुम्हारी वे सब बातें ध्यान देकर सुनी थीं; इसलिये यदि तुम्हें महाराज नरेन्द्रसिंह की पटरानी बनना स्वीकार नहीं है तो तुम अपने उसी चितचोर का पता मुझे क्यों नहीं बतलातीं कि मैं उसे खोज निकालूं और तुम्हें उसके हवाले कर, सुखी होऊं!"

बीरेन्द्र की बातों से कुसुम ने उन्हें झिड़ककर कहा,—"देखो जी, जो तुम यों मुझे छेड़ा करोगे तो मैं अपना सिर पीट डालूंगी!"

बीरेन्द्र ने कहा,—"अच्छा, यदि कुछ अपराध मुझसे हुआ हो तो, उसे क्षमा करो!"

"तुम यों न मानोगे—" यों कहकर कुसुम ने अपना गूंथा हुआ एक गजरा बीरेन्द्र के गले में डाल, हाथ जोड़कर कहा,—"बीरेन्द्र! तुम देवता हो! मैं बहुत दिनों से यह चाहती थी कि तुम्हारी कुछ पूजा करूं, पर मुझ कंगली के पास धरा क्या है, जिसे तुम्हें भेंट करती! इसलिये प्यारे, बीरेन्द्र! तुमने मुझ अनाथिनी को एक दिन श्रीठाकुरजी की पूजा के लिए,—कई बर्ष हुए याद तो है न—पांच मालाओं के पांच रुपये दिए थे और फिर तभी से तुमने मुझ अनाथिनी के नाथ होकर, जैसी चाहिए, मेरी हर-तरह से भलाई की थी। तुम मेरी माला को बड़े चाव से लेते थे, इसलिये आज मैंने रच-पच-कर यह माला तुम्हारे ही लिये बनाई और तुम्हारे गले में डालकर अपना जन्म सफल किया। प्यारे, बीरेन्द्र! बस, इस माला का उचित मूल्य तुम मुझे दे दो, जिसे पाकर मैं सदा के लिए यहांसे बिदा होऊं!"

कहते कहते कुसुम की आंखों से मोतियों की सी लड़ी झरने लगी, जिसे बीरेन्द्र ने अपने पटुके के छोर से रोक लिया और हंस कर कहा,—"अरे, कुसुम! यह क्या किया तुमने? यह तो तुमने मुझे 'बरमाल' पहिना दी!!!"

कुसुम ने उस श्लेष का उत्तर उसी प्रकार दिया, कहा,—"हां, बर (अच्छी) माल जानकर ही तुम्हें मैंने भक्तिपूर्वक अर्पण की है! क्या इसका उचित मूल्य देना तुम्हारे लिये उचित नहीं है!"

इतना कहते कहते उसने तिरछौहें नैनों से बीरेन्द्र की ओर देखा! अब बीरेन्द्र अपने तईं न सम्हाल सके और मारे आनन्द के इतने विह्वल होगए कि उन्होंने झपटकर कुसुम को अपने [illegible]

से लगा लिया और कहा,—" प्यारी, कुसुम ! जैसे सर्वस्व दान देकर बलि ने भगवान् श्रीबामनजी को सदा के लिये अपना रिनियां बना लिया था, वैसे ही तुमने भी आज अपना सर्वस्व देकर मुझे सदैव के लिये अपना बिना दाम का – – –"

इसके बाद बीरेन्द्र जो ' शब्द ' कहा चाहते थे, कुसुम ने उनका मुंह बंदकर उस शब्द का कहना रोक दिया ।

बीरेन्द्र ने फिर कहा,—" प्यारी, कुसुम ! सच्ची बात तो यह है कि अब तक मैं तुम्हें नाहक भूलभुलैयां में डालकर रुला रहा था; इसलिए कि तुम्हारे इस भाव को देख–देख–कर मुझे अपार आनन्द होता था; नहीं तो जिस दिन पहिले पहिल मैंने तुम्हें माला बेंचती हुई बाजार में देखा था, उसी दिन मैंने अपना मन बिना कुछ सोचे बिचारे ही–तुम पर निछावर कर दिया था; और क्यों, कुसुम! तुमने रंगपुर के महाराज से विवाह न कर मुझ सरीखे एक अदने सिपाही को क्यों पसंद किया, जो कि किसी भांति भी कृष्णनगर की राजकन्या के योग्य बर नहीं होसकता ? "

कुसुम ने प्रेम से गद्गद होकर कहा,—" प्राणनाथ ! भला, जिन बातों से मेरे कलेजे में ठेस लगती हो, उन्हें बारम्बार दोहरा–तेहरा–कर कहने में तुम्हेंकौनसा सुख मिलता है ! तुम सच जानो, मैं धर्म की साक्षी देकर कहती हूँ कि मैं तुम्हारी पत्नी बन, तुम्हारे साथ बियाबान जंगल में जाकर कुटी में रहना बहुत अच्छा समझती हूं, पर किसी दूसरे की रानी होकर राजप्रासाद में रहना नहीं चाहती।"

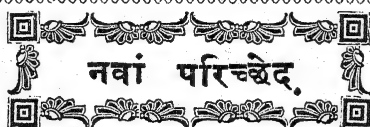
बीरेन्द्र ने कहा,—" प्रियतमे ! आज मुझ सा भाग्यवान पुरुष कदाचित त्रैलोक्य में कोई भी न होगा ! "

कुसुम,—" नहीं नहीं, यों नहीं, बरन यों कहना चाहिए कि आज मुझ सी बड़भागिन स्त्री विधाता की सृष्टि में दूसरी न होगी!"

बीरेन्द्र,—" अच्छा, सुनो, मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हें अब रंगपुर लेचलूं, क्योंकि मैं वहांके महाराज नरेन्द्रसिंह का सेनापति हूं, इसलिये बहुत दिनों तक राज्य से बाहर ही बाहर मैं नहीं रह सकता ।"

कुसुम,—" तो मैंने कब नाहीं किया है ? तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो, या मुझे जहां चाहो, लेचलो ।"

इतने ही में वहां चम्पा पहुंच गई, इसलिये उन दोनों प्रेमियों



नवां परिच्छेद

शुभ यात्रा ।

"सुखं सदा हस्तगतं यशस्विनः।"

संसार में जो पुरुष भाग्यवान होते हैं, वे ही यशस्वी भी कहलाते हैं; और जो यशस्वी हैं, जीवन का सच्चा सुख भी वे ही पाते हैं, तथा उनके संसर्ग से और लोग भी सुखी होते हैं; इसीसे संसार में भाग्य की बड़ी भारी महिमा है, अतएव जो भाग्यवान हैं; उनकी तो जूतियों से सुख लगा रहता है। तो जब बीरेन्द्र के भाग्य की बड़ाई हम किसी तरह कर ही नहीं सकते तो, फिर उनका साथ होने से कुसुम का भाग्य कैसा चमका, इसका बखान हम क्योंकर कर सकते हैं! तात्पर्य यह कि आज यदि हम बीरेन्द्र को कुसुम और कुसुम को बीरेन्द्र बन गया हुआ कहें, या कुसुम और बीरेन्द्र की युगलमूर्ति को आपस में मिलकर एक (दम्पति) मूर्ति बन गई हुई कहें तो अनुचित न होगा; किन्तु जो लोग कुसुम और बीरेन्द्र की दो पृथक मूर्ति देखते हों, उन्हें क्या इस कहावत पर संतोष न होगा कि आज वे दोनों, लोगों की दृष्टि में अलग-अलग दिखलाई पड़ने पर भी इस भांति आपस में मिल गए हैं, जैसे—'एक प्रान दो देह!'

एक दिन बीरेन्द्र ने शुभ मुहूर्त देख कुसुम को साथ लेकर रंगपुर की यात्रा की। एक बहुत ही सुहावने और बहुमूल्य रथ पर, जिसमें चार घोड़े जुते हुए थे, कुसुम के साथ बीरेन्द्र सवार हुए और दूसरे रथ पर चंपा चढ़ी। जिस समय मुर्शिदाबाद से बीरेंद्र ने कूच किया, हर्वे हथियारों से लैस दो सौ सवार, जिन्हें मीरजाफ़र ख़ां ने साथ कर दिए थे, बीरेंद्र के आगे-पीछे चले। मार्ग में हवा से बातें करता हुआ बीरेंद्र का रथ उड़ा जाता था और वे कुसुम के साथ बातें करते हुए बड़े आनन्द के साथ चले जाते थे।

कुसुम ने कहा,—"क्यों जी! तुम तो अपने को रंगपुर के महाराज के सिपाही बतलाते थे, पर यह ठाठ, जिस ठाठ के साथ कि

तुम यात्रा कर रहे हो, एक साधारण सिपाही का नहीं होसकता!"

बीरेन्द्र ने कुसुम की ओर देख मुस्कुराकर कहा,—"यह तुम्हारी भूल है कि तुमने मुझे एक अदना सिपाही ही समझ लिया; बरन तुम यों समझो कि तुम्हारा प्यारा केवल सिपाही ही नहीं, बल्कि सिपाहियों का सर्दार है!"

कुसुम ने मुंह बनाकर कहा,—" चलो, हटो, तुम कपटी हो! तुम्हारी बातें मैं नहीं सुनना चाहती!"

बीरेन्द्र ने कहा,—" ऐ! भला, मैंने तुमसे क्या कपट किया!"

कुसुम,—"यही कि मेरा मन मुझसे बार बार यों कह रहा है, कि,—' ये (तुम) कपटी हैं, (हो) इसलिये कि इन्होंने (तुमने) अभी तक अपना सच्चा भेद न बतलाकर तुझे (मुझे) भुलावे में डाल रक्खा है!' क्यों, यह बात क्या झूठ है?"

बीरेन्द्र ने मुस्कुराकर कहा,—" तो आख़िर, तुम्हारे चुगलखोर चित्त ने तुमसे यह भी तो बतलाया होगा कि,—' यह ('मैं) कपटी, सचमुच है (हूं) कौन?' बतलाओ?"

कुसुम ने बीरेन्द्र की ओर उत्कण्ठित नैनों से निहारकर कहा,—" प्यारे, सच बतलाओ, तुममें और महाराज नरेन्द्रसिंह में कितना अंतर है?"

बीरेन्द्र ने खिलखिलाकर कहा,—" अल्लाह! यह न कहो! अब तो जान पड़ता है कि तुम्हारा चुटीला चित्त महाराज नरेन्द्रसिंह की खोज लगाने लगा! चलो, अच्छा हुआ, इस बात से मुझे भी बड़ा आनन्द हुआ; क्यों कि मैं तो ऐसा चाहता ही था; और सच तो यों है कि राजकन्या का चित्त क्या राजा को छोड़कर किसी (मुझ जैसे) अदने सिपाही पर कभी चल सकता है!"

इतना सुनते ही कुसुम को क्रोध हो आया और उसने ताव पेंच खाकर बीरेन्द्र के हाथ को, जो उसके आगे बढ़ रहा था, झटके से दूर कर दिया और उनकी ओर से अपना मुंह फेर लिया। फिर तो बीरेन्द्र उसे हज़ार ढंग से मनाने लगे, पर उस मानवती का मनाना उनके लिये उस समय कठिन होगया! इतने पर भी उनकी छेड़-ख़ानी कम न हुई और पहिले तो उन्होंने थोड़ी सी बारूद में ही आग लगाई थी, पर अब तो मेगज़ीन ही में बत्ती लगादी; अर्थात उन्होंने यों कहा,—" अच्छा तो, श्रीमती राजकुमारी, कुसुमकुमारी

देवीजी ! जब आप महाराज नरेन्द्रसिंह की पटरानी बनियेगा तो मुझ सरीखे ग़रीबों पर भी सदा कृपादृष्टि बनाए रहिएगा; क्योंकि आपके कृपा-कटाक्ष से ही मुझ जैसे कपटी-कुटिल का भी बेड़ापार लग सकता है!"

इतना सुनते ही कुसुम के तलुवे से चोटी तक आग सी लग उठी और उसने झल्लाकर बीरेन्द्र की ओर बड़े झटके के साथ घूम, तेवर बदलकर दांत पर दांत मसमसाते हुए कहा,—"सुनोजी ! जो तुम इस तरह की छेड़छाड़ मुझसे करोगे तो मैं अभी रथ पर से कूद कर अपनी जान देदूंगी।"

इतना सुनते ही बीरेन्द्र ने उसे भरज़ोर अपने हृदय से लगा लिया और कहा,—"लो, कूदो तो सही!"

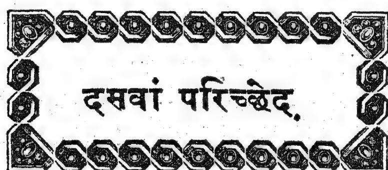
निदान, इसी भांति सुखपूर्वक मार्ग को तय करते हुए तीसरे दिन प्रातःताल के समय बीरेंद्र रंगपुर पहुंचे। शहर के बाहर पहिले से माधवसिंह और मदनमोहन आदि राज्य के प्रधान प्रधान माननीय व्यक्ति उपस्थित थे, जिन्होंने बड़े आदर से बीरेंद्र की अगवानी की और दो हज़ार सवारों की सजी हुई कतार ने सलामी उतारी। फिर बीरेंद्र कुसुम को उसी रथ पर छोड़ और उसके पास चम्पा को बैठाकर आप सजे हुए अम्बारीदार हाथी पर सवार हुए और बड़े धूम-धाम, डंके-निशान और गाजे-बाजे के साथ उनको सवारी राजमन्दिर की ओर चली।

क्यों, पाठक! इस समय बीरेंद्र के राजोचित संन्मान और राजसी ठाठ को देखकर सुकुमारी कुसुमकुमारी के चंचल चित्त में किन किन भावों की तरंगें लहराने लग गई होंगी !!! अस्तु, चलिए और यह देखिए,—बीरेंद्र की सवारो राजमन्दिर के सदर फाटक पर जाकर ठहर गई।

फाटक पर सवारी के पहुंचते ही किले की बुर्जों पर चढ़ी हुई तोपें बीरेंद्र की अभ्यर्थना करने लगीं, राजद्वार पर नौबत झरने लगी और प्रजाओं ने इतने फूल बरसाए कि थोड़ी देर के लिये बीरेंद्र का हाथी और कुसुम का रथ,—दोनों फूलों की ढेर में छिप से गए ! फिर बीरेंद्र का हाथी और कुसुम का रथ सदर फाटक से होता हुआ राजसदन के अंतःपुर की पहिली ड्योढ़ी पर जाकर ठहर गया। उस समय उनके साथ केवल माधवसिंह और मदन-

मोहन घोड़े पर सवार थे ।

हाथी बैठाया गया और बीरेन्द्र उसपर से उतरे। फिर उन्होंने रथ पर से कुसुम का हाथ पकड़कर उसे उतारा। उस समय वह चित्त की चंचलता के कारण एक प्रकार बेसुध सी होरही थी। रथ पर से उसके उतरते ही राजमहल से उस पर घनघोर फूलों की वर्षा होने लगी थी और स्त्रियों के मंगलाचार तथा गानेवालियों के मंगलगीतों से उस समय एक विचित्र आनन्द की मूर्ति क्रीड़ा करती हुई दिखलाई पड़ने लगी थी ।



दसवां परिच्छेद.

गृहप्रवेश ।

" रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् ।"

निदान, बीरेन्द्र कुसुम का हाथ पकड़, संगमर्मर की सीढ़ियों को तय करते हुए जब अंतःपुर की दूसरी ड्योढ़ी पर पहुंचे तो वहां पर सजी हुई तीन सौ स्त्रीसेना ने अपनी अपनी तल्वारें झुकाकर बीरेन्द्र और कुसुम की अभ्यर्थना की और कुसुम की बराबरवाली एक राजनंदिनी ने आगे बढ़कर बीरेन्द्र को यथोचित अभिवादन किया और कुसुम को स्नेह से गले लगा लिया। फिर बीरेन्द्र कुसुम को लिये हुए अन्तःपुर के एक बिशाल सीसमहल में पहुंचे, जो बहुत ही सुहावना और बहुमूल्य वस्तुओं से भली भांति सजा हुआ था। वह गृह कांच के असवाबों के अलावे सोने चांदी और जड़ाऊ खिलौनो तथा गुलदस्तों से भली भांति सजा हुआ था और दलदार मखमली गद्दा, जिसमें ज़रदोज़ी का काम किया हुआ था, कमरे में बिछा था। उस कमरे के बीचोबीच एक सोने का जड़ाऊ सिंहासन बिछा हुआ था, जिसपर ज़र्दोज़ी काम के गद्दी-तकिए रक्खे हुए थे और जड़ाऊ चौडंडियों में मोतियों की झालरवाला चन्द्रातप लगा हुआ था। बीरेन्द्र ने उसी सिंहासन पर बलपूर्वक

कुसुम को ले जाकर बैठा दिया और अपनी अंगूठी उतार, उस की अंगुली में पहिनाकर मुस्कुराते हुए कहा,—

"राजनन्दिनी! यह मेरी तुच्छ भेंट ग्रहण कीजिए। (लवंग की ओर दिखलाकर) यह राजा नरेन्द्रसिंह की छोटी बहिन हैं, इनका नाम कुमारी लवंगलता है। मैं अब आपसे बिदा होता हूं और फिर भी यही प्रार्थना करता जाता हूं कि आप मुझे कभी अपने जी से भुला न दीजिएगा। थोड़ी ही देर में आप महाराज नरेन्द्रसिंह को देखेंगी, जिनके साथ आपका बिवाह होनेवाला है और जिसके होने से मेरे आनन्द की सीमा न रहेगी।"

कुसुम से यों कह बीरेन्द्र ने एक भेद से भरी हुई आंख लवंगलता पर डाली और बिचारी कुसुम को घबड़ाहट, उद्वेग, चिंता, संदेह, संशय आदि के जंजाल में तड़पती हुई छोड़कर वे उस कमरे से बाहर चले गए।

बीरेन्द्र के जाने पर पहिले लवंगलता बोली,—"आप घबरायं नहीं, मेरे भैया अभी आपसे मिलेंगे।"

किन्तु इस बात का जवाब कुसुम ने कुछ भी न दिया, कदाचित उसने लवंगलता की वह बात सुनी भी न हो तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि बीरेन्द्र की बातों ने उस समय उसके चित्त को इतना डामाडोल करदिया था कि जिससे वह अपने आपे में ही न थी। वह न रोती थी, न हंसती थी, न उसाँसें लेती थी, न लवंगलता की बातें सुनती थी, न कुछ आप ही कहती थी और न इसी बात का उसे कुछ ध्यान था कि,—'मैं कौन हूं, किसलिये यहां लाई गई हूं, मेरे पास कौन खड़ा है और मेरे साथ कैसा बर्ताव किया जा रहा है!'

निदान, कुसुम को उस अवस्था में आध घंटे से ज्यादे न रहना पड़ा, क्योंकि उसी कमरे में, जिस कमरे में कि वह बल-पूर्वक जड़ाऊ सिंहासन पर बैठाई गई थी और उसके पास लवंगलता खड़ी थी, चालीस आदमियों के साथ बीरेन्द्र आ पहुंचे। उन पर आंख पड़ते ही कुसुम चिहुंक उठी, किन्तु बिना कुछ कहे-सुने, चुपचाप, कठपुतली की नाईं नीची नार किए, वह जहांकी तहां बैठी रही। बीरेन्द्र के साथ जो चालीस आदमी उस कमरे में आए थे, उनमें महाराज नरेन्द्रसिंह के मित्र मदनमोहन, राजमंत्री माधवसिंह,

कुलपुरोहित, कोषाध्यक्ष, सेनापति आदि राज्य के प्रधान प्रधान कर्मचारी और माननीय लोग थे।

इतने ही में बीस स्त्रियां कमरे में आकर कुसुम के पीछे खड़ी होगईं, जिनके हाथों में छत्र, चमर, पंखे और नंगी तल्वारें थीं। कुसुम के सिंहासन के बाईं ओर राजनंदिनी लवंगलता, सिंहासन का पाया पकड़े हुई स्वाभाविक लज्जा और संकोच से संकुची हुई खड़ी थी।

उस समय बीरेन्द्र ने, कुसुम के सिंहासन के दाहिनी ओर खड़े हो, उन व्यक्तियों से, जो कुसुम के सिंहासन के आगे कुछ दूर पर खड़े मर्यादा से सिर झुकाए हुए थे, कहा,—

"माननीय महाशयों! कृष्णनगर के स्वर्गीय महाराज धनेश्वर-सिंह महोदय की कन्या, जो आप लोगों के मित्र राजा नरेन्द्रसिंह की पटरानी बनाने के लिये यहाँ लाई गई हैं, आप लोगों के सामने सिंहासन पर विराजमान हैं।"

बीरेन्द्र की बात सुनकर पहिले पुरोहितजी ने सिंहासन के पास पहुंच, सोने के नारियल को कुसुम की गोद में देकर आशीर्वाद दिया कि,—"श्रीमती चिरसौभाग्यवती और बीरमाता हों।" फिर राजमंत्री माधवसिंह, मदनमोहन आदि उपस्थित व्यक्तियों ने कुसुम को भेंट दी और तब सब लोग सिर नवाकर कमरे में से चले गए।

इसके बाद बीरेन्द्र का इशारा पाकर सब स्त्रियां भी कुसुम को भेंट दे-दे-कर कमरे से बाहर होगईं और वहाँ पर बीरेन्द्र, कुसुम और लवंगलता के अलावे और कोई न रह गया।

उस समय औसर देखकर लवंगलता ने कहा,—"ऐं! भैया! भाभी तो बड़ी सुन्दर हैं! आप कहांसे ऐसी सुन्दर बहू लाए! इनका पाना तो बड़ी भारी तपस्या का फल कहा जा सकता है!"

बीरेन्द्र ने मुस्कुराकर कहा,—"अरी, जा, पगली! तैंने तो सारा भंडा ही फोड़ दिया।"

इतना सुनते ही कुसुम ने, जो अब तक बध्य-पशु की भांति एक प्रकार से सिंहासन-रूपी खंभे में बंधी हुई सी थी और इतना समय जिसने सपने की भांति बड़ी कठिनाई से काटा था, भौंहें तानकर बीरेन्द्र की ओर देखा और ताने के तौरपर कहा,—

"क्यों, महात्मा ! अभीतक उन देवता के तो दर्शन हुए ही नहीं, जिन्हें बलि चढ़ाने के लिये मैं यहां लाई गई हूं !"

बीरेंद्र ने नेहभरे नैनों से उसकी ओर निहारते हुए कहा,—"प्यारी, कुसुम ! तुम्हारा अचल अनुराग मुझपर जानकर उदार-हृदय नरेंद्रसिंह ने तुम्हें मुझीको देडाला !"

यों कहकर उन्होंने कुसुम का हाथ पकड़ना चाहा, पर उसने उनका हाथ झटक दिया और तिरछी होकर कहा,—"वाह ! भला, मैं तुम्हें कब चाहती थी ! मैं तो महाराज नरेंद्रसिंह की ही दासी बनूंगी, न कि त्रैलोक्य में किसी और की !"

पाठकों को समझना चाहिए कि लवंगलता का इशारा पाकर बीरेन्द्र के सारे प्रपंचों को अब कुसुम भलीभांति समझ गई थी, इसीलिये उसने इस समय ऐसा उत्तर दिया और यों कहकर वह सिंहासन से नीचे उतर और बीरेंद्र के सामने खड़ी हो, हाथ जोड़ कर कहने लगी,—

"चतुरचूड़ामणि ! बस, अब आप अपनी चतुराई रहने दीजिए। अब आपकी माया मुझपर न चलेगी ! हाय रे निर्दई, कपटी ! तुझे जरा दया तो दूर रहे, लाज भी न आई कि जो तूने मेरे नन्हें से कलेजे पर कैसी कैसी चोटें पहुंचाईं ! किन्तु हा !—निगोड़े हिये की जलन से मैं न जाने क्या क्या कह गई ! इसलिये प्राणनाथ ! दासी का अपराध क्षमा करना।"

यों कहकर वह बीरेन्द्र के चरणों पर गिरा ही चाहती थी कि उन्होंने उसे रोक लिया और कहा,—"प्यारी, कुसुम ! मेरा दुष्टपन अपने मन से अब दूर कर दो। सचमुच बीरेन्द्र और नरेन्द्र कोई दो व्यक्ति नहीं हैं; किन्तु इस ढंग का परिहास मैं इसीलिये तुम्हारे साथ अब तक करता रहा कि इस परिहास से जितना तुम्हें दुःख होता था, उससे कड़ोर गुना अधिक मुझे सुख मिलता था। अस्तु, जाने दो; मेरी हृदयेश्वरी, हृदयहारिणी, प्यारी ! तुम नरेन्द्र को छोड़कर संसार में और किसीको भी मानसरंजिनी नहीं होसकतीं !"

पाठकों ने तो कदाचित लिखावट के ढंग से कुसुम के समझने के पहिले ही यह बात जान ली होगी कि बीरेन्द्र और नरेन्द्र कोई दो व्यक्ति नहीं हैं; और यह बात भी कदाचित पाठक भूले न होंगे कि बीरेन्द्र ने कमलादेवी से उनके मरने के समय अपना सच्चा

हाल कह दिया था और आज हमने भी पाठकों के आगे सच सच कह दिया।

निदान, उस समय उस अनिर्षचनीय सुख की तरंगें इतने बेग से कुसुम के हृदय में क्रीड़ा करने लगीं कि जिनका उफान उसकी आंखों से बह निकला; जिसे नरेन्द्र ने अपने पटुके के छोर से धीरे धीरे रोका और कहा,-"प्यारी! अब क्यों व्यर्थ खेद करती हो?"

कुसुम ने रुंधे हुए गले से कहा,-"प्राणनाथ! आज मेरे सुख की सीमा नहीं है! आज मैं समझती हूं कि मेरे समान बढ़भागिन त्रिलोक में भी कोई दूसरी न होगी। अहा, प्यारे! मुझ जैसी एक अनाथिनी, सदा की दुखिया, भिखारिन को तुमने अपनी पटरानी बनाया! प्रियतम! मैं जगदीश्वर से यही बर मांगती हूं कि मैं जनम-जनम तुम्हारे ही चरणों की दासी हुआ करूं!"

इतना कहते कहते कुसुम की आंखें फिर भर आईं, पर उस समय अवसर देखकर लवंगलता ने दो एक ऐसी बातें कहीं कि जिनसे वह कली की तरह खिल गई।

इतनी देर से लवंगलता चुपचाप खड़ी थी, पर उससे अब न रहा गया और बीरेन्द्र—नहीं, नहीं, नरेन्द्र—की ओर देखकर उसने कहा,-"क्यों भैया! बतलाइए, इन्हें मैं अभी क्या कहकर पुकारूं?"

नरेन्द्र,—"जो तेरे जी में आवे।"

लवंगलता,—"तो मैं 'भाभी' कहकर पुकारूंगी (कुसुम की ओर देखकर) क्यों भाभी! यह बात ठीक है न? या जैसा आप मुझे सिखलादें!"

इतने ही में नरेन्द्र ने धीरे से कोई गुप्त बात कुसुम के कानों में कह दी, जिसका हाल लवंगलता को कुछ भी मालूम नहीं हुआ और चट कुसुम ने उसके जवाब में यों कहा,—"अच्छा, बीबी-रानी! पहिले तुम यह तो बतलाओ कि मैं बबुआ मदनमोहन को आज ही से 'नन्दोईजी' कहकर पुकारना क्यों न आरंभ कर दूं? ऐ, लो! भागीं क्यों? सुनो, सुनो!!!"

पर फिर कौन सुनता कुसुम की इस बात के सुनते ही लवंगलता वहांसे भाग गई थी! फिर नरेन्द्र ने उसे बुलाकर कुसुम को उसके हवाले किया और आप अन्तःपुर से बाहर चले गए।



ग्यारहवां परिच्छेद

नखसिख।

" दृष्ट्या खञ्जनचातुरी मुखरुचा सौधाधरी माधुरी,
वाचा किञ्च सुधासमुद्रलहरीलावण्यमातन्यते।"

अपूर्व और विशुद्ध प्रेम स्वर्गीय सम्पत्ति है और वही इस जड़ जगत का एकमात्र जीवन या आधार है। इसकी महिमा का पार नहीं है, इसके रूप असंख्य हैं, इसके नाम अनन्त हैं और इसके गुण का भी अन्त नहीं है। इसी प्रेम के चित्र उतारने में आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण बनाई, कविकुलगुरु कालिदास ने रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत और शकुन्तला की रचना की, भवभूति ने मालतीमाधव और भारवि ने किरातार्जुनीय को लिखडाला, किन्तु उस प्रणय का सर्वाङ्ग-सुन्दर चित्र किसीने क्या उतार डाला !!! यदि हां,—तब तो अब दूसरे चित्र के उतारने के लिये परिश्रम करना झख मारना है; और यदि नहीं,—तो फिर उस चित्र के उतारने की इच्छा करना भी मूढ़ता से खाली नहीं है। सोचिए तो पाठक! जब कि सरस्वती–वरगर्वित कविगण प्रेम के सर्वाङ्गसुन्दर चित्र अंकित करने में अपारग रहे, तो फिर हम जैसे मतिहीन जड़भरत इस विषय में कितना साहस कर सकते हैं! और भी देखिए,–कि जब प्रेम ही के चित्र उतारने में इतनी बाधा है तो फिर उस वस्तु का चित्र क्योंकर उतारा जा सकता है, जो प्रेमाधार या प्रेम का निदान है!!!

प्रयोजन यह कि उपन्यासों में नायक-नायिका के रूप का वर्णन करना भी एक आवश्यक बात मानी गई है, इसीके जंजाल में फंस-कर आज हम अपनी सारी चौकड़ी भूल गए हैं और हैरान हैं कि इस आपदा से क्योंकर अपने तईं बचावें !!!

बात यह है कि आज षोड़शी देवी कुसुमकुमारी की रूपराशि का वर्णन हम किया चाहते हैं, और यही हमारे लिये घोर संकट का मानो सामना करना है !!! अब यदि पाठक! आप कवि हैं, तो बतलाइए कि हम किस भांति अद्वितीय सुन्दरी कुसुमकुमारी का

चित्र उतारें? इसका उत्तर कदाचित आप यह देंगे कि,–"अजी! तो इस तुच्छ बात के लिये तुम कवि होकर इतना क्यों घबरा उठे! देखो, कुसुम की वर्णना क्या यों नहीं हो सकती कि,—

"चंद कैसो भाग–भाल, भृकुटी कमान कैसी,
मैन कैसे पैने सर, नैननि बिलास है।
नासिका सरोज, गंधबाह से सुगंधबाह,
दारयों से दसन, कैसो बिजुरी सो हास है॥
संख कैसी ग्रीवा, भुज पान से उदर अस,
पंकज से पांय, गति हंस कैसी जास है।
देखी बर बाम, काम–बाम सी सरूपमान,
सोने सो सरीर, सब सोंधे की सी बास है॥"

और भी–

"कंज से चरन, देवगढ़ी से गुलुफ सुभ,
कदली से जंघकटि सिंह पहुंचत है।
नाभी है गंभीर, ब्याल रोमावली, कुच कुंभ,
भुज ग्रीव भाप कैसी ठोढ़ी बिलसत है॥
मुखचंद बिम्बाधर चौंका चारु सुकनास,
खंज मीन नैनन बंकाई अधिकत है।
भाल आधो बिधु भाग करन अमृत कूप,
बेनी पिकबैनी की सुभूमि परसत है॥"

किन्तु, पाठक! आपको धन्यवाद है! आपके इस उपदेश और दृष्टान्त के लिये आपको कोटि कोटि धन्यवाद है!!! आप हमको 'कवि' कहकर ताना न मारिए! क्योंकि यदि हम कवि होते तो फिर इतना रोना ही काहे का था! सो, हम न तो कवि हैं और न काव्यविशारद! तो क्या हैं? एक महानीरस, अल्हड़!!! इसलिये

आपके नखसिख की क्या मजाल, जो कुसुम की परछाईं की भी परछाईं छू सके! इसीसे झींखते हैं कि आज कुसुम के रूप का बखान करने का हठ करके हमने अपने तईं आप उलझन में डाला!!!

तो अब हम क्या करैं! कुसुम की रूपराशि के चित्रित करने के लिये जब जब हम दुमुंहीं लेखनी को पड़कते हैं, तब तब वह नागिन की तरह थिरककर हाथ से छूट कोसों दूर भागती और अपना मुंह चुराती है, तथा सारे उपमान भी अपनी जड़ता का आप ही आप अनुभव कर लज्जित हो, इधर उधर दुम दबाकर खसक जाते हैं; तो ऐसी अवस्था में अब हम करैं तो क्या करैं! हाय! क्या ऐसी उलझन में भी कभी मनुष्य उलझता है!!!

खैर, तो हार मानकर इस जंजाल से अपने तईं अब दूर क्यों न करैं! क्योंकि कुसुम की रूपराशि का बखान करना हमारी शक्ति से बाहर है। और क्यों न ऐसा हो, जब कि षोड़शी कुसुम की किशोर अवस्था में भी ऐसी स्थिरता और कोमलता है कि जो उसके सहज लावण्य की उपमा को कवि की प्रतिभा द्वारा क्या कभी उत्पन्न होने दे सकती है! अहा! जिस मनोहारिणी लावण्यमयी मूर्ति के एक बार दर्शन करने से, 'आबालवृद्धवनिताः, सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः,' हो जाते हैं, उस अनुपम मनोमोहिनी की असीम सुन्दरता के बखान करने का बीड़ा उठाकर हमने खूब ही अपयश लूटा!!!

यदि कोई चतुर चित्रकार उस चित्त के चंचल कर देनेवाली कुसुमकुमारी की अनुपम रूपराशि के चित्र उतारने के लिये हाथ उठाता तो निश्चय है कि उसे पहिले मूर्छा धर दबाती और उसका सारा सयानपन भूल जाता; फिर अन्त को उसे अपनी उस ढिठाई के लिये बहुत ही पछताना पड़ता और हार मान यों कहकर हाथ से कूंची रखदेनी पड़ती कि,–'देवी! तुझ सी तुही है!'

सोचने की बात है कि चंपा, चमेली, गुलाब और जपाकुसुम के रंग के समान पीले, सफ़ेद, गुलाबी, और लाल रंग के मेल से बना हुआ कुसुम के सुकुमार शरीर का सा अलौकिक रंग वह बापुरा चितेरा कहांसे लाता! फिर उस भाग्यवती के बिशाल भाल के लिखने के समय यदि उस (चितेरे) को कुसुमायुध की रंगस्थली का ध्यान आजाता तो वह अनाड़ी अनमना सा हो, रेखागणित के साध्यों की भांति न जाने क्या का क्या लिख मारता!!!

भला, लाख चतुराई ख़र्च करने पर भी क्या किसी चतुर चित्रकार का मँजा हुआ हाथ, उस समय कांप कर बेहाथ न होजाता, जब कि वह उस आदर्शरमणी की अलकावली के दोनों हिस्सों को आगे से अर्धचंद्राकार घुमाकर कानों के ऊपर से बराबर लेजा कर के जूड़े के बांधने का मनसूबा बांधता !!!

भला, यह भी कभी संभव था कि चतुराई का दम भरनेवाला चतुरानन का चेला चितेरा प्रलयपर्यन्त सिर पटकते रहने पर भी कभी अमल मंदाकिनी की पीयूषधारा के उतपत्तिस्थान से कुछ दूर हटकर भ्रू शैवालरेखा के नीचे पलक पींजरे के भीतर मनोल्लास से खेलती हुई मतवाली मीन की जोड़ी का चित्र अंकित कर सकता!!!

और यह भी उससे कब बन सकता कि वह चितेरे का अचार, लड़ती हुई दो मछलियों के नीचे सुआ का चित्र लिखता, जो बिम्बफल के ऊपर बैठा हुआ कबूतर की पीठ पर केलि कर रहा हो, जिसके दोनों ओर दो मतवाली नागिनें मचल-मचल कर बार-बार चन्द्र-बिम्ब से अमृत चूस-चूस, विष का उद्गार उगल-उगल कर देखनेवालों के हिये में डस-डस लेती हों !!!

फिर यह कब होसकता था कि वह खिलाड़ी का दावा करनेवाला निरा अनाड़ी चितेरा, वहीं सुधासरोवर के तीर, सिंहासन पर पधराई हुई दो सालिग्राम की बटिया बना सकता, जिनकी काली प्रभा से लाल डोरे निकल रहे हों और वे किसी महाभावुक कवि-हृदय के इस उद्गार के आदर्श हों कि,–

"अमी हलाहल मदभरे, सेत, स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥

कहने का तात्पर्य यह कि जिसे बिधाता ने आप ही आप रच-पच कर हाथ पैर धो, प्रणायाम करके अलौकिक उपादानों के मेल से अनुपम बनाया हो, कवि बापुरा उसके लिये क्योंकर अलौकिक उपमानों को पैदा कर सकता है ! ! !

निदान, कुसुमकुमारी, कुसुमकुमारी ही थी, वह वहीथी, और वह अपनी उपमा आप ही थी।

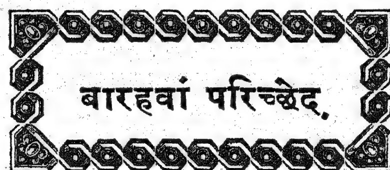
लीजिए, पाठक ! कविवर कालिदास के "मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्"–इस कथनानुसार हमने अपनी हंसी आप

ही कराई या नहीं ! ! ! इसीसे कहते हैं कि बाबा ! इस नखसिख के झमेले में पड़कर हमने भरपूर दुर्गति की पहुंनाई खाई !!! अस्तु, अलमतिविस्तरेण ! ! !

हेराम ! डाल से छूटे तो पात में अटके!!! अब उपाय ! लीजिए, अब यह उपसर्ग लगा कि,—'कुसुम के भ्रमर (नरेन्द्र) का तो नखसिख कहा ही नहीं, और कान कटाकर निकल भागने की पड़ गई !!!' हरे ! हरे !!! मनुष्य क्या कभी ऐसी आपत्ति के पाले भी पड़ता है !!! अच्छा, ठहरिए, पाठक ! हमने अपने भागने के लिये काव्यवाटिका की खिड़की तो खोल ही रक्खी है, तो अब इतना ही कहकर हम नौ दो ग्यारह क्यों न हों कि,—

"अलौकिक कुसुम के लिये जैसे लोकातीत भ्रमर की आवश्यकता होती है, हमारे आख्यानरूपी उद्यान की शोभासंपत्ति कुसुम के अनुरूप ही विधाता ने उसके रसलम्पट भ्रमर को भी बनाया था, कि जिस जुगलजोड़ी की रूपमाधुरी पर मन ही मन मदन इतना जला कि वह सदा के लिये अंग खोकर अनङ्ग बन गया और अर्धाङ्ग गंवाकर रति की भी मानो सारी रत्ती उतर गई !!!"

बस, अब तो छुट्टी मिलेगी न ! ओ हो, राम राम करके इस जंजाल से छुटकारा मिला !!!



बारहवां परिच्छेद.

हास–बिलास।

"हास्यं मनोहारि सखीजनानाम्"

एक दिन संध्या के समय एक सजे हुए कमरे में कुसुमकुमारी और लवंगलता बैठी हुई आपस में इधर उधर की बातें करके अपना जी बहला रही थीं। उस समय वहां पर और कोई तीसरा न था, इसलिये उन दोनोंने अपने अपने हिये के किवाड़े खोल दिए थे और हास–परिहास का आनन्द होरहा था।

कुसुमकुमारी ने लवंगलता की ठुड्ढी पकड़कर कहा,–" क्यों, बीबी ! तुम तो मुझे अभीसे इतना प्यार करने लग गई हो कि मानों हमारा-तुम्हारा जनम से साथ रहा हो !"

लवंगलता ने कुसुम के गले में बाहें डाल दीं और मुस्कुराकर कहा,–" यह बात तुमने कैसे जानी, भाभी !"

इतना सुनकर कुसुम खिलखिलाकर हंस पड़ी और उसने अपने दहिने हाथ की नन्हीं नन्हीं तीन अंगुलियों से लवंगलता के गाल को छूकर कहा,—" वाह, क्या कहना है ! भला, मैं तुम्हारी भाभी कबसे हुई !"

लवंगलता,—" जबसे तुमने मेरे भैया के चित्त को चुराया ! किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि, उलटा चोर कोतवालै डांड़े!"

कुसुम,—" वाह, भई ! तुम तो खूब बोलना जानती हो, पर यह तो बतलाओ कि तुमने इतनी बात बनानी किससे सीखी है ! क्या तुम उसका नाम बतलाओगी, जिसने तुम्हें इतनी चतुराई सिखाई है ! "

लवंगलता,—" पर, भई ! भाभी के कहनेसे तुम इतना चिढ़ती क्यों हो ? मान लो कि अभी लोकाचार का होना या फेरे का पड़ना भर बाक़ी रहगया है, तो इससे क्या ! जब कि चार दिन बीते वह बात होहीगी, तो फिर उसके लिये इतना घबराती क्यों हो !"

कुसुम,–" बहुत खासी ! सवाल कुछ और जवाब कुछ और!!! तुम्हारे इस कहने से तो, बीबी ! मुझे यही जान पड़ता है कि तुम मेरे सिर नहाकर अपने जी का उबाल उगल रही हो !"

लवंग०,–" तुम यह क्या कहने लगीं ! "

कुसुम,–"यही कि तुम्हारे लिये भी तो अभी उतनी ही देर है, जितनी कि तुम मेरे लिये बतला रही हो ! किन्तु यदि तुम्हें चार दिन की भी समाई न हो तो मैं आज ही तुम्हारे फेरे पड़ने का प्रबन्ध करदूं !"

लवंग०,–" वाह ! यह तो तुमने अपने जी का हाल खूब ही कहा ! मैं आज ही भैया से कह-सुन-कर तुम्हारी घबराहट के दूर करने का उपाय करूंगी ! "

कुसुम,—" और मैं भी बबुआ मदनमोहन से इस विषय में बातचीत करूंगी और उनसे कहूंगी कि,—' बबुआ ! आप एक कामिनी को इतना क्यों तरसा रहे हैं ?' क्यों, तब तो ठीक होगा न?"

लवंग०,–" वाह, यह तो तुमने अच्छा बेसुरा तान गाया! भला; उनसे क्या प्रयोजन है !"

कुसुम,—" अक्ख़ाह ! यह मैंने अब जाना कि बबुआ मदन-मोहन के अलावे तुम किसी और से भी कुछ मतलब रखती हो !!!"

लवंग,०—" आइने में जैसा मुंह देखो, वैसा ही दिखलाई देता है ! "

कुसुम,–" ठीक है, यह मैंने अब समझा कि मैं आइना भी हूं! तब तो तुमने अपनी सूरत जैसी की तैसी देखली !"

लवंग०,–" जाओ, भई ! तुम तो ऐसी बातें करने लगती हो कि जिनका मेरे पास कुछ जवाब ही नहीं है !"

कुसुम,—" तो अपने उस्तादजी से सीखकर जवाब देना !"

लवंग०,—" वाह ! मेरा उस्ताद कौन है ?"

" उसे मैं अभी यहीं बुलवाए लेती हूं !" यों कहकर कुसुम ने घंटी बजाकर एक दासी को बुलाया और उसे हुक़्म दिया कि,—" तू अभी जाकर बबुआ मदनमोहन को यहां बुला ला !"

इतना सुनते ही लवंगलता ने कुसुम के पैर थाम्ह लिए और गिड़गिड़ाकर कहा,—" भाभी ! मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं दयाकर तुम मुझे इतना न सताओ ! "

लवंगलता की गिड़गिड़ाहट देख उसे कुसुम ने अपने गले लगा लिया और ठीक उसी समय कमरे में पैर रखते-रखते नरेन्द्र ने हंसकर कहा,—" वाह आज तो खूब घुट-घुट-कर बातें होरही हैं ! तुझे किसने सताया है, लवंग !"

नरेन्द्र को आते देख कुसुमकुमारी और लवंगलता उठ खड़ी हुईं और दासी, जो अभी तक वहीं खड़ी थी मुस्कुराती हुई तुरंत कमरे के बाहर चली गई; परन्तु मदनमोहन को उसने इसलिये नहीं बुलाया कि कुसुम ने इशारे से उसे मना कर दिया था।

निदान, कुसुम ने नरेन्द्र का हाथ थाम कर उन्हें गद्दी पर ला बैठाया और गद्दी से कुछ दूर पर लवंगलता का हाथ पकड़े हुई स्वयं भी बैठ गई।

उसने नरेन्द्र की ओर देख मुस्कुराकर कहा,–"अभी जो तुमने बीबीरानी से इनके सताए जाने का हाल पूछा था, उसके विषय में यदि कहो तो मैं कुछ सुनाऊं !"

कुसुम के इस ढंग को देख लवंगलता बहुत ही लज्जित हुई और उसने बहुतेरा चाहा कि,—'किसी तरह यहांसे भागे,'-पर कुसुम इतने ज़ोर से उसका हाथ पकड़े हुईथी कि वह किसी तरह भी अपने हाथ को न छुड़ा सकी।

नरेन्द्र ने कहा,–" हां, हां! कहो, इसे किसने क्या सताया है!"

कुसुम,—" तुमने सताया है!"

नरेन्द्र,–(आश्चर्य से) " क्या, मैंने!"

कुसुम,–" हां, हां! तुम्हींने!"

नरेन्द्र,—" कैसे!"

कुसुम,—"कहते हो कि कैसे! भला, तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं है, कि तुम इनके ब्याह में इतनी ढिलाई कर रहे हो? देखते नहीं कि बिचारी दिन पर दिन, मारे सोच फिकर के, फूल की तरह कुम्हलाई जाती हैं! क्या तुम्हें इन पर ज़रा भी दया नहीं आती! क्या, इन्हें तुम सदा क्वांरी ही रक्खोगे! देखो तो सही, बिचारी ब्याह के लिये कितना तड़प रही हैं!"

इतना सुनते ही लवंग बड़े झटके से अपना हाथ छुड़ाकर वहां से भागी!

नरेन्द्र ने कुसुम के परिहास पर हँस दिया और कहा,–" मुझे सबका खयाल है, किन्तु बात यह है कि पहिले तुम्हारा ब्याह करादूं, तब लवंग का करूं!"

कुसुम ने कहा,–" हां, हां! अच्छा तो है! मेरा ब्याह मदन-मोहन से करा दो और तुम लवंगलता से कर लो!"

नरेन्द्र,०" वाह! यह क्या कहने लगीं!"

कुसुम,–" और क्या! जब भरपूर जवाब मिला, तब कैसा चिहुंके! अभी तुमने क्या कहा था, ज़रा अपने कहने के ढंग पर बिचार तो करो! आज तुमने फिर कल की भांति 'रुक्मिणी-परिहास' की पोथी खोली!"

नरेन्द्र ने मुस्कुराकर कहा,–" क्यों, प्यारी! तुमने इतना क्रोध कभी और भी किसीपर किया था!"

इतना सुनकर कुसुम ने हंस दिया और कहा,–" किस पर करती! क्यों कि तुम सा अपराधी मेरे भाग्यों ने पाया ही कब था!!!"

नरेन्द्र,–" तो फिर इस (मुझ) अपराधी को कुछ दण्ड भी तो मिलना चाहिए।"

कुसुम,–" हां, अवश्य मिलना चाहिए और वह दण्ड यह है!"

इतना कहकर वह नरेन्द्र से ज़रा दूर हट गई और बोली,– " क्यों! उस अपराध के लिये क्या यह दण्ड ठीक नहीं है !"

नरेन्द्र ने उसे पास खैंचकर कहा,—" प्यारी संसार में इससे बढ़कर प्रणयी के लिये और कोई दूसरा दण्ड हई नहीं; इसलिये अब तो मैं दिन रात में ऐसे ऐसेलाखों अपराध किया करूंगा, जिसमें मुझे तुम बराबर ऐसाही दण्ड दिया करो!"

कुसुम ने कहा,–" अच्छा, एक बात पूछूं?"

नरेन्द्र,–" क्या ?"

कुसुम,–" यही कि लवंगलता के व्याह में तुम इतनी ढिलाई क्यों कर रहे हो?"

नरेन्द्र,—"क्या तुम यह बतला सकती हो कि लवंग मदनमोहन को हृदय से चाहती है ?"

कुसुम,—" इसमें कुछ भी सन्देह न करना चाहिए, क्यों कि जहां तक मैंने परखा है, वहां तक यही बात साबित हुई है कि वे दोनों एक दूसरे को जी-जान से प्यार करते हैं।"

नरेन्द्र,—" ठीक है, मैं भी ऐसा ही समझता हूं और तुम्हारे कहने से तो अब इस विषय में कुछ संदेह रहा ही नहीं।"

कुसुम,–" तो फिर इस काम को झटपट निपटा डालो।"

नरेन्द्र,–" हां, मैं भी यही चाहता हूं, किन्तु एक अड़चन बीच में यह आपड़ी है कि जिसके कारण अभी कुछ दिन तक और भी लवंगलता के ब्याह को रोकना पड़ेगा। हां, इस बात को तुम निश्चय जानो कि इस झंझट से छुटकारा पाते ही मैं पहिले लवंगलता का ब्याह करके तब दूसरा काम करूंगा।"

तेरहवां परिच्छेद.

युद्धयात्रा.

" क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्र, क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।"

कुसुम,—" तो ऐसी कौन सी झंझट आपड़ी है ?"

नरेन्द्र,—" सुनो, कहता हूं,—इसीके कहने के लिये तो मैं इस समय तुम्हारे पास आया ही हूं।"

कुसुम,—"तो बतलाओ भी कि वह कौन सी बात है?"

नरेन्द्र,—" सुनो, लाट क्लाइब साहब का दूत एक पत्र लेकर आया है। उस पत्र में उन्होंने लड़ाई में साथ देने का न्योता भेजा है और मुझे बुलाया है। नव्वाब सिराजुद्दौला के साथ कंपनीवालों की लड़ाई छिड़गई है और ऐसा विश्वास होता है कि अबकी बार वह गोरे सौदागरों से भरपूर हार खाएगा। आज अंग्रेज़ी के मई महीने की पहिली तारीख़ (सन् १७५७ ई०) है और मुझे पलासी के मैदान में जहां तक होसके जल्द पहुंचना चाहिए, इसलिये मैं तुमसे युद्धयात्रा के लिये बिदा मांगने आया हूं कि तुम मुझे हंसी-खुशी बिदा करो। ईश्वर ने चाहा तो बहुत जल्द मैं जीत के नगाड़े बजाता हुआ तुमसे आकर मिलूंगा।"

नरेन्द्र की इन बातों ने कुसुमकुमारी के हृदय को किस भांति मसल डाला, इसका हाल उसका जी ही जानता होगा! लड़ाई में जाने की बात सुनकर वह मारे घबराहट के रोने लग गई। यहांतक कि घंटों तक नरेन्द्र उसे समझाते रहे।

अन्त में वह शान्त हुई और बोली,—" जाओ, प्यारे ! संग्राम में बिजयलक्ष्मी का आलिंगन करो, पर देखना मुझे भूल न जाना।"

नरेन्द्र ने कुसुम को गले लगा, आंखों में आंसू भरकर कहा,—"प्यारी! भला, जीते जी, मैं तुम्हें कभी भूल सकता हूं। तुम निश्चय जानो कि तुम्हारे इसी अलौकिक प्रेम के बल से ही तो मैं संग्राम में बिजय पाऊंगा!"

कुसुम ने आंसू ढलकाते-ढलकाते कहा,—"प्यारे! ईश्वर ऐसा ही करे! अस्तु, मैं तुम्हें रोककर राजपूत-बालाओं के माथे अपयश न

मढूंगी, इसलिये......"

इसके अनन्तर कुसुम ने नरेन्द्र को फूलों की माला पहिना, माथे में दही का टीका और भुजा पर रक्षाकवच बांधकर उनके हाथ में नंगी तलवार धराई और गले गले मिलकर रोते रोते उसने अपने प्रान प्यारे को बिदा किया।

फिर नरेन्द्र लवंगलता से बिदा हो और अंतःपुर की रखवाली का भार मदनमोहन तथा मंत्री को देकर राजमंदिर से पधारे।



चौदहवां परिच्छेद.

समर-विजय.

" क्व भूपतीनाञ्चरितं क्व जन्तवः ।"

सन् १७५६ ई० में सदाशय अलीवर्दीखां के मरने पर उनके भतीजे ज़ैनुद्दीन का बेटा, अर्थात् उनका नाती सिराजुद्दौला बंगाल, बिहार और उड़ीसे का सूबेदार हुआ, जिसने मुर्शिदाबाद को अपनी राजधानी बनाया था। वह बड़ा क्रोधी, हठी और अत्याचारी था, तथा अंगरेज़ों से बड़ा विरोध रखता था। जब उसने यह सुना कि,-'मेरे ख़जानची राजा राय दुर्लभ ने अपना सारा मालमता और घरबार के लोगों को मेरे पंजे से निकाल, अपने लड़के कृष्णदास के साथ अंगरेजों की सरन में कलकत्ते भेज दिया है;' तो तुरंत उसने राय दुर्लभ को कैदकर लिया और एक दूत को कलकत्ते अंगरेज़ों के पास इसलिये भेजा कि,-'वह उनसे रायदुर्लभ के बेटे आदि को मांगलावे।' वह मनुष्य कलकत्ते फेरीवाले सौदागरों के भेस में पहुंचा और सेठ अमीचंद के मकान पर ठहरा। अमीचंद ने उसे अंगरेज़ों से मिलाया, पर उनलोगों ने इस मामले में अमीचंद का लगाव समझा और उनकी या सिराजुद्दौला के दूत की बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया।

निदान, जब वह आदमी अपना सा मुंह लेकर ख़ाली हाथ झुलाता लौट आया तो फिर सिराजुद्दौला ने झल्लाकर एक दूत

भेजकर अंगरेज़ों को यों धमकाया कि,—' तुम कलकत्ते में किले की मज़बूती मत करो; ' इस बात पर भी अंगरेज़ों ने कुछ ध्यान न दिया। तब तो सिराजुद्दौला का खून जोश में आया, उसके क्रोध की आग भड़क उठी और उसने लड़ाई का बहुत अच्छा बहाना पालिया। पहिले उसने कासिमबाजार वाली अंगरेज़ों की कोठी ज़ब्त करली और फिर उन्हें कलकत्ते के किले में जा घेरा। वहां पर उस समय गोरे सिपाही सौ भी न थे और किले के बचने की भी कोई आशा न थी। यह उपद्रव देख, बहुत से अंगरेज़ तो ड्रेक साहब गवर्नर के साथ जहाज और किश्तियों पर सवार होकर वहां से निकल भागे और जो बिचारे बेख़बरी में किले के अन्दर रह गए थे, वे दूसरे दिन कैद होकर सिराजुद्दौला के सामने लाए गए, उनमें किले के अफ़सर हालवेल साहब भी थे, जिनकी मुश्कें बंधी हुई थीं। सिराजुद्दौला ने उनकी मुश्कें खुलवा दीं और कहा,— ' ख़ातिर जमा रक्खो, तुम्हारा ज़रा भी नुकसान न होने पावेगा;' किन्तु रात के समय जब गोरे कैदियों के रखने के लिये कोई मकान न मिला तो सिराजुद्दौला के नौकरों ने एकसौ छियालीस (१४६) अंग्रेज़ों को एक ही कोठरी में, जो केवल अठारह फुट लंबी और चौदह फुट चौड़ी थी, बंदकर दिया। (१) उस सांसतघर में जो कुछ उन कैदी बिचारों के जी पर बीता होगा, उसे वे ही अभागे जानते होंगे! उनमें कितने घायल थे, बहुतेरे शराब के नशे में प्यास से व्याकुल थे और कई, मल मूत्रादि के बेग के रोकने से बहुत ही बेचैन थे!

निदान, सबेरे जब उस काल कोठरी का दर्वाज़ा खोला गया, तो एकसौ छियालीस गोरों के केवल तेईस गोरे जीते निकले जो मुर्दों से भी गए बीते थे! उनमें से हालवेल साहब सिराजुद्दौला के सामने पेश किए गए, उनसे वह दुराचारी बार बार यही पूछता रहा कि,—' बतलाओ, अगर जांबख़शी चाहते हो तो जल्द बतलाओ, अंग्रेज़ों ने ख़ज़ाना कहां छिपाकर रक्खा है ?'

किन्तु बिचारे हालवेल साहब ने इस बात का कुछ भी जवाब

(१) इस कोठरी का नाम अंग्रेजों ने Black hole अर्थात् कालीबिल रक्खा है।

न दिया, तब सिराजुद्दौला ने उनके सहित दो और अंग्रेज़ों के पैरों में बेड़ियां डलवाकर उन तीनों को तो खुली किश्तीपर कैद रहने कि लिये मुर्शिदाबाद भेज दिया और शेष बीस गोरों को छोड़ दिया; किन्तु तीन चार दिन पीछे स्वर्गीय नव्वाब अलीवर्दीख़ां की बूढ़ी और नेक बेगम हमीदा ने सिराजुद्दौला से सिफ़ारिश करके उन तीनों गोरों को भी कैद से छुटकारा दिलवा दिया था।

इधर तो यह सब होरहा था और उधर जब इस अत्याचार का समाचार मंदराज पहुंचा तो वहां वालों ने, ६०० गोरे और १५७० देशी सिपाहियों के साथ क्लाइब को, जो इंगलैण्ड से इष्टइण्डिया कम्पनी का लेफ्टिनेण्ट कर्नल होकर आया था, दस जहाज़ों पर कलकत्ते भेजा। दूसरी जनवरी सन् १७५७ ई० को पहुंचते ही क्लाइब ने पहिले कलकत्ता लिया, जिससे चिढ़कर तीसरी फर्वरी को सिराजुद्दौला चालीस हज़ार आदमियों की भीड़भाड़ लेकर कलकत्ते के पास जा पहुंचा, किन्तु क्लाइब ने बंगाले के कई जिमीदार राजाओं की सहायता से क़िले से बाहर निकल सिराजुद्दौला की फ़ौज पर ऐसा हमला किया कि यद्यपि उस हल्ले में उसे १२० गोरे, १०० सिपाही और दो तोपें गवांकर फिर क़िलेमें पनाह लेनी पड़ी थी, पर सिराजुद्दौला २२ अफ़सर और ६०० सिपाहियों के मारे जाने से इतना घबरागया कि उसने उस समय इस शर्त पर सुलह करली कि,—" जो कुछ कम्पनी का माल असबाब लूट और ज़प्ती में आया हो, दाम दाम लौटा दिया जाय; कम्पनी के आदमी कलकत्ते में चाहे जैसा मज़बूत क़िला बनावें; टकसाल अपनी ज़ारी करें, अड़तीसों गावों पर, जिनकी सनद सन् १७१७ ई० में उन्होंने पाई थी, अपना कब्ज़ा रक्खें; बंगाले में जहाँ चाहें, बेरोक टोक सौदागरी करें; जहां चाहें, कोठियां खोलें और महसूल की माफ़ी के वास्ते उनका दस्तख़त काफ़ी समझा जाय। "

आखिर, इस शर्त्त पर सुलह होगई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सिराजुद्दौला ने इस शर्त्त पर केवल अंग्रेज़ों को भुलावा देने और काबू पाने के लिए ही सुलह की थी; क्यों कि जी उसका मैला था, अंग्रेजों से वह भीतरी डाह रखता था और फरासीसियों का पक्ष करता था, बरन अपने यहां उन्हें नौकर भी रखने लग गया था।

उसकी इन चालबाज़ियों से क्लाइब अनजान न था, वह भी

मौका ढूंढ़ रहा था। उसने मन ही मन इस बात पर भली भांति विचार कर लिया था कि,—'इस देश में या तो अंगरेज़ ही रहेंगे, या फ़रासीसी; क्यों कि जैसे एक मियान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, वैसे ही एक देश में अंगरेज़ और फ़रासीसी—ये दोनों कभी नहीं रह सकते।'

निदान, जब सिराजुद्दौला ने फ़रासीसियों का सहारा लिया तो लाचार होकर क्लाइब को भी उसका उपाय करना पड़ा। उस समय सिराजुद्दौला के अत्याचारों से सभी उससे फिर गए थे और सभोंको अपनी जान-माल, और इज्जत-आबरू का खटका हरदम बना रहता था। सो, यह मौका क्लाइब के लिये बहुत अच्छा था और वह सिराजुद्दौला के दरबारियों और कारपर्दाजों को अपनी ओर तरह तरह के लालच देदेकर मिलाने लगा।

निदान, अलीवर्दीख़ां के दामाद मीरज़ाफ़रख़ां, जो सिराजुद्दौला का ख़जानची या सेनापति था, दीवान राजा रायदुर्लभ और जगत सेठ महताब राय (१) ने अपनी जान, माल और इज्जत-आबरू उस अत्याचारी के हाथ से बचाए रखने की इच्छा से मुर्शिदाबाद के रेजीडेंट वाट्स साहब के द्वारा क्लाइव से यह कहलाया कि,—'यदि आप सिराजुद्दौला की जगह मीरजाफर खां को सूबेदार बनावें तो हम सब आपके सहायक होंगे।' इस पर चतुरशिरोमणि लाट क्लाइव ने कहला भेजा कि,—'आप लोग धीरज रक्खें, मैं ५००० ऐसे सिपाही साथ लेकर आता हूं कि जिन्होने आज तक कभी रन में पीठ नहीं दिखलाई है। यदि आप लोग सिराज़ुद्दौला को गिरफ्तार करा देगें तो मैं आप लोगों का कृतज्ञ होऊंगा और आप लोगों के कहने के अनुसार मीरजाफ़रख़ां को बंगाले का नव्वाब बनाऊंगा।'

फिर तो आपस में नित्य नई नई शर्तें होने लगीं, पर अन्त में अंग्रेजों ने उसी शर्त्त पर, जो कि सिराजुद्दौला के साथ हुई थी और जिसका हाल हम ऊपर लिख आये हैं, मीरजाफ़रख़ां से एक अहद-नामा लिखवा लिया और उसमें इतना और भी बढ़ाया कि,—"अब

(१) हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द इसी वंश में हुए।

तक फ़रासीसियों के लिये जो कुछ हुआ हो, या उनका जो कुछ हो वह अंगरेज़ों के लिये हो या अंगरेज़ों का हो; फ़रासीसी सदा के लिये बंगाले से निकाल दिए जांय और मीरजाफ़रखां करोड़ रुपए कम्पनी को, पचास लाख कलकत्ते के अंगरेज़ों को, बीस लाख हिंदुस्तानियों को, सात लाख अर्मेनियों को, पचास लाख सिपाहियों और जहाज़ियों को और दसलाख कौंसिल के मेम्बरों को नुकसानी या नज़राने के तौर पर दें और कलकत्ते से दक्खिन काल्पी तक कम्पनी की ज़मींदारी समझी जाय।"

कलकत्ते के महाधनी महाजन सेठ अमीचंद यदि अंगरेज़ों की हर तरह से सहायता न किए होते तो अंगरेज़ों के लिये सिराजुद्दौला को तख़्त से उतारना बहुत ही कठिन होता, किन्तु उन्हीं अंगरज़ों ने सेठ अमीचन्द पर जैसे जैसे भयानक अत्याचार किए, उसका साक्षी इसिहास है। सो, कम्पनीवालों के अत्याचार से सेठ अमीचंद का घर खूब ही लूटा गया था। इसलिये जब मीरजाफ़रख़ां के साथ कम्पनीवालों का अहदनामा होने लगा तो इस खबर को पाकर सेठ अमीचन्द (१) भी उसमें जा पहुंचे और लाचार अंग्रेज़ों को उन्हें भी उस कमेटी में रखना पड़ा। सेठ अमीचन्द सिराजुद्दौला के मुंह लग गए थे और वह उनकी बात भी बहुत मानता था और बाट्स साहब का भी उनसे बहुत काम निकलता था, इसलिए उन्हें उस कमेटी में न रखना अंग्रेज़ों की सामर्थ्य से बाहर था।

यह एक ऐसा मौका था कि अमीचन्द अंग्रेज़ों से उनके अत्याचार का बदला लें और अपनी हानि मिटाडालें, इसलिए उन्होंने क्लाइव से कहा कि,—" सुनिए, साहब! आप लोगोंने बिना कारण जो कुछ अत्याचार मुझपर किए, या मेरा सर्वस्व लूटकर मेरे घर को उजाड़ डाला, इसका हाल तो आपलोगों का जी ही जानता होगा कि आपलोगों ने अपने एक उपकारी मित्र को उसके उपकारों का किस भांति बदला चुकाया!!! अस्तु, अब बात यह है कि मीरजाफ़रखां के सूबेदार बनाने पर नव्वाबी ख़ज़ाने से जो कुछ रुपए अंग्रेज़ों को मिलें, उनमें से पांच रुपए सैकड़े मैं लूंगा,

(१) हिन्दीभाषा के जनक भारत भूषण भारतेन्दु श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र जी इसी बंश में हुए।

जिसका एकरारनामा कम्पनी अभी मुझे लिखदे; नहीं तो यह सारा भेद मैं अभी सिराजुद्दौला के आगे खोलकर सभोंको आफ़त में डाल दूंगा।"

यह सुनते ही अंग्रेज़ों के छक्के छूट गए और उनलोगों ने समझ लिया कि,—'एक तो हमलोगों के अत्याचार से यह बिचारा पिस ही गया है, दूसरे अब यदि इसे राजी नहीं करलेते तो यह ज़रूर नव्वाब के आगे सारा भेद खोल देगा और हम लोगों को बड़ी भारी बला में फंसावेगा।' पर उतना रुपया अमीचन्द को देना अंग्रेज़ों को कब स्वीकार हो सकता था, इसलिए उन लोगोंने अमीचन्द को राज़ी करने के लिये काम बनाया और दो रंग के काग़ज़ों पर दो तरह का अहदनामा लिखा गया। लाल काग़ज़ पर जो अहदनामा लिखा गया, उसमें तो पांच रुपए सैकड़े अमीचन्द को देने का इकरार था, किन्तु जो अहदनामा सफेद काग़ज़ पर लिखा गया, उसपर उन बेचारे का कहीं नाम ही न था! ये दोनों काग़ज़ जब दस्तख़त होने के लिए कौंसिल में पेश किए गए तो अडमिलर अर्थात् अमीरुलबहर ने लाल काग़ज़ पर हस्ताक्षर करना स्वीकार नहीं किया, तब कौंसिलवालों ने उसका दस्तख़त आप बना लिया। (१)

निदान क्लाइव तीन हज़ार लड़ाके और नौ तोपें लेकर कलकत्ते से चला और सिराजुद्दौला भी पचास हज़ार सवार, प्यादे और चालीस तोपें लेकर पलासी के मैदान में आधमका; सैकड़ों फ़रासीसी भी उसके साथ थे। तेईसवीं मई को प्रातः काल उसी जगह लड़ाई प्रारम्भ हुई और सिराजुद्दौला ने बिजय पाई। फिर चौबीसवीं को जब कम्पनी की सेना में लड़ाई के बाजे बजने लगे, मीरजाफ़र ने अपनी सेना को लड़ाई के लिए तैयार होने से रोक दिया। हायरे, स्वार्थपरता!!! और धिक विश्वासघात!!!

अपने सेनापति मीरजाफ़र का यह ढंग देख सिराजुद्दौला बहुत ही घबराया और उसने मीरजाफ़र को बहुत कुछ समझाया; पर जब उसने किसी तरह भी लड़ने की सलाह न दी तब सिराजुद्दौला ने अपने सिर से ताज़ उतार कर उसके पैरों पर रख दिया और

(१) इस पर राजा शिवप्रसाद यों लिखते हैं कि,—" मानो फार्सी मसल पर काम किया – गर ज़रूरत बवद रवा बाशद।"

कहा,—" खुदा के वास्ते अब इस बेकस पर रहम कीजिए और अगर इस नादान की कुछ खता हो तो उसे मुआफ़ कीजिए ।" किंतु विश्वासघातक और राज्यलोभी मीरजाफ़र बराबर यही कहता रहा कि,—" जहांपनाह ! आज लड़ाई मौक़ूफ़ रहने दीजिए, फौज पीछे हटा लेने दीजिए, कल फिर ज़रूर लड़ेंगे।" और जगतसेठ ने तो यों हीं कह डाला कि,—" हुजूर का मुर्शिदाबाद ही तशरीफ लेचलना बिहतर होगा, क्यों कि इन सफेद देवों से फ़तहयाबी हासिल करना ग़ैर मुमकिन है।"

निदान, सिराजुद्दौला की फ़ौज का मुड़ना था कि अंग्रेज़ उस पर पंजे झाड़कर इस तरह लपके, जैसे हिरनों के झुंड पर चीते लपकते हैं । आखिर, सिराजुद्दौला की फ़ौज तितर बितर होकर भागी और अंग्रेज़ों ने आठ मील तक उसका पीछा किया । बस, सिराजुद्दौला के नौकरों का विश्वासघात और यह पलासी की बिजय ही मानो भारतवर्ष में अंग्रेज़ी राज्य की जड़ जमाने का कारण हुई ।

सिराजुद्दौला के भागने पर मुर्शिदाबाद के ख़जाने की रोकड़ मिलाई गई तो ड़ेढ़ करोड़ रुपए के लगभग गिनती में आए, जो अहदनामें के अनुसार सबका दाम दाम चुका देने के लिये काफ़ी न थे । तब अंग्रेज़ों ने यह बात ठहराई कि,—'अहदनामें के बमूजिब आधे आधे रुपए तो अभी चुका दिए जायं और आधे तीन किस्तों में तीन साल के अंदर पटा दिए जायं।'

अन्त में इसी सम्मति के अनुसार आधे रुपए चुका दिए गए और इसके अलावे मीरजाफ़रख़ां ने सूबेदारी पाने की खुशी में सोलह लाख रुपए अपनी ओर से क्लाइव के नज़र किए ! जब ख़ज़ाने से रुपए बंटने लगे, उस समय सेठ अमीचंद मारे आनन्द के फूले अंगों नहीं समाते थे, क्यों कि उन्होंने हिसाब लगाकर अपने हिस्से के तीस पैंतीस लाख रुपए जोड़ रक्खे थे; किन्तु जब फोर्ट विलियम क़िले के दरवार में अहदनामा पढ़ा गया और उसमें उनका नाम न निकला तो वे बहुत ही घबराए और चट बोल उठे कि,—" क्यों साहब ! यह क्या बात है कि इस अहदनामे में मेरा नाम नहीं है ?"

क्लाइव,—" हां, साहब ! इसमें आपका नाम नहीं है।"

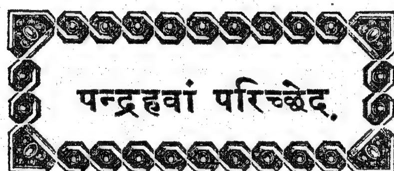
अमीचंद,—" मगर, साहब ! वह तो लाल काग़ज़ पर था ?"

क्लाइव,—" जीहां, लेकिन वह लाल काग़ज सिर्फ आपको

सब्ज़बाग़ दिखलाने के लिये लिखा गया था, इस वास्ते इन रुपयों में से आपको एक कौड़ी भी न मिलेगी।"

यह सुनते ही अमीचंद चक्कर खाकर धर्ती में गिर, बेसुध होगए और उनके नौकर चाकर उन्हें पालकी में डाल घर उठा लाए। जब वे होश में आए तो पागलपने की बातें करने लगे और उसी अवस्था में डेढ़ बरस तक अपने कर्मों को भोग, परलोक सिधारे!

राजा शिवप्रसाद सदा अंग्रेज़ों की खुशामद करते रहे, पर क्लाइव की यह बात उन्हें भी बुरी लगी और उन्होंने भी उसके लिये यों लिखा कि,—"अफ़सोस है कि क्लाइव ऐसे मर्द से ऐसी बात ज़हूर में आवे, पर क्या करें ईश्वर को मंजूर है कि आदमी का कोई काम बे ऐब न रहे। इस मुल्क में अंगरेज़ी अमल्दारी शुरू से आज तक मुआमले की सफाई और कौलक़रार की सचाई में मानो धोबी की धोई हुई सफ़ेद चादर रही है, केवल इसी अमीचंद ने उसमें यह एक छींटासा लगा दिया है।"



पन्द्रहवां परिच्छेद.

पाप का प्रायश्चित्त।

"अन्तः प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः।"

पलासी की लड़ाई से हारकर भागा हुआ सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद में आया, किंतु वहां भी उसके पैर न जमें; क्यों कि अपने दुराचरण के कारण उसे किसी पर कुछ भरोसा तो था ही नहीं! और भरोसा भी तो उसे तब हो सकता, जब कि उसने कभी किसीके साथ कुछ भलाई की होती। निदान, अपनी सैकड़ों बेगमों में से दो बेगम, एक ख़ोज़ा और कुछ ज़वाहिरात साथ लेकर वह मुर्शिदाबाद से रात के समय भागा; किंतु उसका पाप उसका साथ कब छोड़ सकता था! सो, राज महल के पास एक जंगल में एक फ़कीर ने उसे पहिचान कर तुरंत वहांके हाकिम से इस बात की ख़बर करदी।

किसी समय में वह फ़कीर अच्छी दशा में था, पर उसकी बीबी को सिराजुद्दौला ने बलपूर्वक छीनकर अपने महल में दाख़िल किया था और उसके नाक कान कटवा डाले थे। तभी से वह बेचारा संसार से निरास हो, फ़कीर होगया था और आज मौका पाकर बदला लेने के लिये उसने सिराजुद्दौला का हाल राजमहल के हाकिम करीमख़ां पर प्रगट कर दिया था।

करीमख़ां मीरजाफ़रख़ां का भाई था, सो उसने सिराजुद्दौला को पकड़, कैद करके मुर्शिदाबाद अपने भाई मीरजाफ़रख़ां के पास भेज दिया और उसकी दो बेगमें, जो उसके साथ थीं, उन्हें अपने महल में दाख़िल किया।

यद्यपि सिराजुद्दौला की महा हीनदशा पर मीरजाफ़र को कुछ दया आई भी, पर उसका बेटा मीरन सिराजुद्दौला से बहुत ही चिढ़ाहुआ था, इसलिये उसने अपने बाप से पूछे बिना ही अपने हाथ से उसे काट डाला। उस समय उस (सिराजुद्दौला) की उमर बीस बरस से भी कुछ कम ही थी!

एक समय किसी बात पर चटककर सिराजुद्दौला ने मीरन को विष दिलवाया था, पर आयु शेष रहने से वह बचगया था; उसी बात का बदला उसने आज सिराजुद्दौला को अपने हाथ से कतल करके लेलिया था।

सिराजुद्दौला की सैकड़ों बेगमें थीं, पर उसके मारेजाने पर उन बेचारियों की क्या दशा हुई, इसका लिखना हम उचित नहीं समझते, किन्तु हां! सतीत्वनाशकारी दुराचारी व्यक्ति की स्त्रियां प्रायः अन्त में जैसी आपत्ति को भोगती हैं, कदाचित उन सभोंको भी उसी आपदा का सामना करना पड़ा होगा!!!



सोलहवां परिच्छेद.

देवीपूजन ।

" दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः । "

पहली मई को नरेन्द्रसिंह कुसुम से बिदा होकर पलासी की लड़ाई में साथ देने के लिए लाट क्लाइवसाहब के पास गए थे, जिसे आज पूरा एक महीना बीत गया है; अर्थात् आज पहिली जून है। इस एक महीने के भीतर सुशीला कुसुम की क्या अवस्था हुई, या उसने नरेन्द्र के वियोग में एक महीने के दिन क्यों कर काटे, इस परिच्छेद में हम वही वृत्तांत लिखा चाहते हैं।

पहिली मई को नरेन्द्र कुसुम से बिदा हुए, वह रात कुसुम ने बड़ी ही बेचैनी के साथ काटी यद्यपि वह साधारण स्त्रियों की भांति डाढ़ें मार मार कर रोती न थी, पर जिस तरह भीतर ही भीतर उसका हिया रोरहा था, वह यन्त्रणा बड़ी ही भयानक थी और उसी पीड़ा से वह अत्यन्त बिकल थी; जिस बिकलता के चित्र खैंचने में हम किसी तरह भी समर्थ नहीं हैं। यद्यपि भाई के जाने से लवंग को कुछ थोड़ा दुःख न था, पर कुसुम की ऐसी अवस्था होरही थी कि जिसे देख लवंग अपना दुःख भूल सी गई और हर तरह से वह कुसुम के जी बँटाने या बहलाने का उद्योग करने लगी थी!

लवँग की उस समवेदना को देख, जैसी कि वह अपने भाई की जुदाई को भूल, भौजाई [कुसुम] के मन बहलाने में दिखलाने लग गई थी, कुसुम बहुत ही चकित हुई और तब उसने मन ही मन यह सोचकर कि,—' अरे! लवंग मुझे इतना प्यार करती है कि जो अपने भाई के वियोग को मेरी बिकलता देख कर भूल गई और मेरे जी बहलाने के लिए जी जान से भांति भाँति के उद्योग करने लगी है! तो अब अपने जी की पीर जी ही में क्यों न छिपाए रहूं और क्यों न इस सुख दुख की साथिन सहेली [ननद] के जी

में इसके भाई की जुदाई का ध्यान न आने दूं;' उसने अपने मन के क्षोभ को भीतर ही भीतर दबा रक्खा और हंसी-खुशी अपनी सहेली (ननद्-लवंगलता) के साथ वह रात उसने बिता दी ।

दूसरे दिन बड़े तड़के उठकर कुसुम ने मंत्री माधवसिंह को बुलाया और उनसे वह इस प्रकार बातें करने लगी ।

कुसुम ने कहा,—" मैंने आपको इस समय इसलिये कष्ट दिया है कि क्या आप मेरी थोड़ी सी इच्छा पूरी कर सकेंगे ? "

माधव०,—" आप ऐसा क्यों कहती हैं, आज्ञा कीजिए; आज्ञा पाते ही मैं उस काम के करने के लिये बाध्य हूं, जो आप कहें ।"

कुसुम,–(सिर झुकाकर) " आप जानते हैं कि वे संग्राम में गए हैं ।"

माधव०,—" किन्तु क्या चिन्ता है ! वीरों के लिये संग्राम से बढ़कर आनन्द देनेवाला दूसरा कोई खेल हई नहीं ! "

कुसुम,–" आपका कहना ठीक है, किन्तु हम-अबलाजनों का जी तो बिधाता ने बहुत ही कोमल उपादानों से बनाया है ! "

माधव०,—" किन्तु वीरनारियों की इसीमें शोभा है, कि वे हृष्ट-चित्त से अपने पति को संग्राम में जाने के लिये बिदा करें ।"

कुसुम,—"हां, ऐसा ही है; तथापि मैं यह चाहती हूं कि उनके कल्याण के लिये कुछ देवाराधना की जाय । "

माधव०,–" हां ! ऐसा अवश्य होना चाहिए, इसलिये आप जो आज्ञा करें, मैं अभी उसका सब प्रबंध करनेके लिये तैयार हूं।"

कुसुम,—" आपको मेरे कहने से कितने रुपए खर्च करने का अधिकार प्राप्त है ! "

माधवसिंह ने यह सुन, जेब में से एक काग़ज निकाल कर कुसुम के आगे रख दिया और कहा,–" इसे देख लीजिए, इसके अनुसार आप जो आज्ञा देंगी, उसके पालन करने में मुझे कोई बिचार न होगा ।"

कुसुम ने वह काग़ज़ उठाकर देखा । वह नरेन्द्र का आज्ञापत्र था; जिसे वे मंत्री के नाम लिख गए थे । उसमें उन्होंने माधवसिंह को यह आज्ञा दी थी कि,–" श्रीमती कुसुमकुमारी देवी मेरी जगह समझी जायं । और उनकी सब आज्ञाएं मेरी आज्ञा समझकर तुरंत पालन की जायं । जो कुछ वह चाहें, खजाने से लेकर खर्च कर

सकें और उनकी किसी आज्ञा या इच्छा की उपेक्षा कदापि न कीजाय – – –" इत्यादि।

पाठक सोच सकते हैं कि नरेन्द्र के इस उदार हृदय के अद्भुत परिचय को पाकर कुसुम का हृदय आनन्द से कहां तक बिह्वल हुआ होगा ! अस्तु- थोड़ी देर तक तो वह चुपचाप आंसू गिराती रही; फिर आंचल से आंखें पोंछ, सिर झुकाए हुई बोली,—

"तो उनकी इस आज्ञा के अनुसार तो मैं बहुत कुछ अपने जी की हवस निकाल सकती हूँ !"

माधव,–" अवश्य,–आज्ञा कीजिए !"

कुसुम,–" कदाचित इसे आप कभी अस्वीकार न करेंगे कि देवाराधन सभी अवस्था में अच्छा और कल्याणकारी होता है।"

माधव,–" जी हां, वह कभी व्यर्थ नहीं होता और आस्तिक हिन्दुओं के लिये तो इससे बढ़कर चित्त की शान्ति देने वाला दूसरा कोई उपाय हई नहीं।"

कुसुम,–" अच्छा, तो ऐसी अवस्था में मेरी इच्छा है कि राज-बाड़ी के उद्यान में जो भुवनेश्वरीदेवी का मन्दिर है, मैं एक मास तक वहीं रहकर व्रत करूं और 'सहस्रचण्डी' का अनुष्ठान आज ही से आरम्भ किया जाय। एक सहस्र कंगलों को नित्य भोजन कराया जाय और 'एक सौ आठ' कुमारी नित्य जिमाई जायं।"

माधव,–" जो आज्ञा, मैं अभी पुरोहितजी को बुलवाकर इसका प्रबन्ध करता हूं, क्योंकि आपने यह बहुत अच्छा बिचारा है, किन्तु एक मास तक आप किस प्रकार का व्रत करेंगी ?"

कुसुम,–" दिनभर मैं भगवती की पूजा किया करूंगी और सन्ध्या को केवल थोड़ा सा दूध पीकर एक मास ब्रह्मचर्य से ब्यतीत करूंगी।"

माधव,–" मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कहा चाहता, किन्तु इतना निवेदन करना उचित समझता हूं कि आपका शरीर इतने कठोर व्रत या ब्रह्मचर्य के कष्ट सहने योग्य नहीं है।"

कुसुम,–" यदि आप मुझे अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने से न रोकें तो बड़ी कृपा हो।"

माधव,–" जैसी आज्ञा।"

इतना कहकर वे कुसुम को अभिवादन कर बिदा हुए और

उनके जाते ही लवंगलता ने वहीं पहुंच कर कहा,—" भाभी! यह तुमने कैसे व्रत और ब्रह्मचर्य के करने की ठहराई है ? "

कुसुम,—" एक बात कहूँ ! मानोगी ? "

लवंग,—" प्रान रहते तुम्हारी बात कभी न टालूंगी।"

कुसुम,—" तो मैं तुमसे हाथ जोड़कर यही मांगती हूं कि तुम मेरी इच्छा में बांधा न डालो और मुझे मेरी इच्छा के अनुसार काम करने दो। "

निदान, फिर लवंगलता ने इस पर विशेष कहना उचित न समझा। एक घंटे के बाद कुसुमकुमारी सिर से स्नान कर और रेशमी वस्त्र पहिर, भुवनेश्वरी के मन्दिर में गई; तब तक माधवसिंह ने उसकी इच्छा के अनुसार सारे प्रबंध कर लिये थे। पुरोहित जी भी उपस्थित थे और कई ब्राह्मण ' सम्पुट-सहस्त्रचण्डी-पाठ ' के अनुष्ठान करने के लिये उपस्थित थे। ' एक सौ आठ ' कुमारी कन्याएं भी उपस्थित थीं।

निदान, कुसुम ने नरेन्द्र के कल्याणार्थ संकल्प किया और अनुष्ठान प्रारंभ हुआ। उस समय सब अपने अपने कामों में लग गए। ब्राह्मण सम्पुट पाठ करने लगे, पुरोहितजी उसकी देख भाल करने लगे, माधवसिंह तथा मदनमोहन कुमारियों और कंगलों के भोजन के प्रबंध में लगे और लवंगलता केवल कुसुम का मुंह निहारने लग गई!!!

दिन को जबतक ब्राह्मण पाठ करते, साक्षात् भगवती की भांति कुसुमकुमारी भुवनेश्वरी के सामने खड़ी खड़ी प्रतिमा के चरणों पर फूल चढ़ाया करती और तीसरे पहर जब पाठ समाप्त होता तो उन ब्राह्मणों को भोजन कराकर वह स्वयं पात्रभर कच्चा दूध पीलेती। फिर स्नान कर दो घंटे तक भगवती की पूजा करती और उसके बाद थोड़ी देर तक लवंगलता से बात चीत करके भूमि में चटाई पर सो रहती थी।

इसी प्रकार होते होते इकतीसवें दिन पुरश्चरण पूरा हुआ और बत्तीसवें दिन बड़े धूमधाम से हवन हुआ। उस दिन हवन में ही सारा दिन बीत गया था, इसलिये तेंतीसवें दिन अष्टोत्तरसहस्त्र ब्राह्मणों और उतनी ही कुमारियों को भोजन कराकर वस्त्र और यथोचित दक्षिणा दी गई और महा अनुष्ठान समाप्त हुआ।

आज पांचवीं जून है, संध्या का समय है, सहस्रचंडी यज्ञ समाप्त करके कुसुमकुमारी का चित्त बहुत ही शान्त और प्रसन्न है। यद्यपि वह आज एकमास से बराबर केवल पावभर दूध पीकर पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहती है, जिससे शरीर बहुत ही दुबला होगया है, पर उसके मुख की कांति ऐसी देदीप्यमान होरही है कि जिस से आज वह कुमारी साक्षात पार्वती सी प्रतीत होरही है! यज्ञ के साङ्गोपाङ्ग समाप्त होने और हवन तथा ब्राह्मण भोजन आदि से निवृत्त होने पर भी वह अभी तक नियमित दूध ही पीकर रहती है

पांचवीं जून, संध्या के समय वह लवंगलता के साथ भुवनेश्वरी के मन्दिर में बैठी हुई बातें कर रही थी। उसने कहा,-"प्यारी, ननद! अभी मेरी बाईं आंख फड़क उठी!"

लवंग०,-"भाभी! इससे निश्चय जान पड़ता है कि भैया राज़ी खुशी अब आया ही चाहते हैं।"

कुसुम,-"भगवती करे, तुम्हारी बात सच्ची होजाय!"

इतने ही में चंपा ने पहुंचकर कहा,—"इनकी बात सच्ची हो गई, बीबी रानी! सरकार आगए! सवारी राजमन्दिर की ओर आ रही है!"

यह सुनते ही कुसुम ने उठकर पहिले भुवनेश्वरी को प्रणाम किया और फिर अपने गले में से एक बहुमूल्य मोतियों की माला उतार चंपा के गले में डालकर कहा,—

"चंपा! केवल इतना ही नहीं, तुम्हें मैं आज की बधाई में अभी बहुत कुछ दूंगी।"

चंपा,-"और मैं लूंगी भी!"

लवंग०,-"देखो! भाभी! तोपें सलामी उतारने लगीं; इस-लिए चलो, ऊपर अटारी पर चलें!"

कुसुम,-"चलो, बीबी!"

——०——

सत्रहवां परिच्छेद.

प्रसाद ।

" प्रसादस्तु प्रसन्नता "

निदान, चंपा के साथ वे दोनों राजनन्दिनी राजसदन की सबसे ऊंची छतपर चढ़ गईं, किन्तु रात्रि के कारण वहांसे अच्छी तरह कुछ दिखलाई न दिया, इसलिये लवंगलता के साथ कुसुम नीचे उतर आई । फिर कुसुमकुमारी तो तेज़ी के साथ कमरे में घुस गई और लवङ्गलता दालान में रह गई; इतने ही में नरेन्द्रसिंह ने वहां पहुंचकर उसे आनन्द-गद्गद कर दिया !

नरेन्द्र को देखते ही लवङ्गलता मारे खुशी के उनके पैरों पर गिरने लगी, पर उन्होंने उसे बीच ही में रोककर उसके मस्तक को हृदय से लगा लिया और उसे सूंघा ।

लवङ्गलता ने बड़ी प्रसन्नता से पूछा,—" भैया ! आप राज़ी खुशी से रहे न ? "

नरेन्द्र,—" हां, बहिन ! मैं बड़े आनन्द से रहा और जगदीश्वर की दया तथा बड़ों के पुण्य-प्रताप से कुशल पूर्वक घर लौट आया । "

लवङ्ग,—" आहा, यह बड़ी खुशी की बात हुई कि आप राजी खुशी आगए ! "

इसके बाद नरेन्द्र ने पूछा,—" कुसुम कहां है ? "

लवङ्ग,—" वह अभी इसी कमरे में गई हैं ।"

यह सुन नरेन्द्र ने कमरे में पैर रक्खा और लवङ्गलता कमरे के बाहर ही इस लिए रह गई कि जिसमें बिछुरे हुए प्रेमी आपस में जी खोल कर मिल सकें ।

निदान, ज्यों ही नरेन्द्र कमरे में पहुंचे कि कुसुम कुमारी दौड़ कर उनके पैरों पर गिर पड़ी । यह देखते ही उन्होंने बड़े प्रेम से उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया । उस समय उन दोनों की आंखों से प्रेमाश्रु बह चले थे ।

कुसुम ने नरेन्द्र की और नरेन्द्र ने कुसुम की आंखें पोंछ दीं,

और कुसुम ने कहा,–" आप राजी खुशी से आगए, यह बड़े भाग्य की बात हुई।"

नरेन्द्र ने कहा,–" हां, देवी! हम तुम्हारे ही भाग्य से सकुशल लौट आए!"

कुसुम,–" यह भगवती का परम अनुग्रह है!"

नरेन्द्र,–" अवश्य, अवश्य! और तुम्हारे अद्भुत चरित्र की सारी कथा मैंने अभी मन्त्री जी से सुनी हैं; अहा, मुझसा भाग्यवान पुरुष कदाचित त्रैलोक्य में दूसरा कोई न होगा! क्यों कि मैंने अनन्त पुण्य वा तपोबल के प्रताप से ही तुम सी गृहलक्ष्मी को पाया है।"

कुसुम,–" प्यारे, यह मेरी बड़ाई नहीं, बरन तुम्हारी ही है, क्यों कि मैं तो तुम्हारे चरणों की रज हूं।"

नरेन्द्र,–" तुम मेरे प्राणों से भी बढ़ कर प्यारी हो।"

कुसुम,–" भगवती करैं, आपका ऐसा ही अनुराग इस दासी पर सदा बना रहै।"

इतने में नरेन्द्र ने इधर उधर देख कर कुसुम से कहा,–" लवङ्ग कहां रह गई?"

यह तो हम कही आए हैं कि लवङ्ग कमरे के बाहर ही ठहर गई थी, सो, नरेन्द्र की बात सुन, यह कहती हुई कमरे में चली गई कि,–" मैं आई, भैया!"

नरेन्द्र ने कहा,–" लवङ्ग! कुसुम के व्रत की बात, जो मैंने अभी मन्त्री जी से सुनी है, वह कैसी है?"

लवङ्ग ने कहा,–" भैया! आप कुछ न पूछें। आहा! भाभी का व्रत देखकर तो मैं दंग हो गई! जिस दिन से आप गए, उस दिन से आज तक इन्होंने दूध के अलावे और कुछ भी नहीं खाया है!"

नरेन्द्र,–" मैंने मंत्रीजी से अभी सारी कथा सुनी है। अस्तु, लवङ्ग! तू मेरे भोजन का प्रबन्ध कर, तब तक मैं सन्ध्यावन्दन कर आऊं।"

यों कहकर वे बाहर चले गए और लवङ्ग तथा कुसुम ने मिलकर ब्यालू की तैयारी की। डेढ़ घंटे के अन्दर नरेन्द्र आए और आसन पर बैठकर उन्होंने कुसुम से कहा,–" मैं आज पहिले तुम्हें खिलाकर तब खाऊंगा।"

कुसुम,—" नहीं, तुम पहिले भोजन करो, फिर मैं भी तुम्हारी जूठन पाकर अपने को कृतार्थ करूंगी।"

नरेन्द्र,—" पर आज तो मैं बिना तुम्हे पहिले खिलाए कभी खाऊंगा ही नहीं।"

कुसुम,—" नहीं, प्यारे! इतना हठ न करो और मुझे कांटों में न घसीटो।"

नरेन्द्र,—" हाय! तुम्हें मुझपर ज़रा दया नहीं आती! राम, राम मारे भूख के मेरी आत्मा विकल होरही है और तुम कुछ भी मेरा कहना नहीं मानतीं!"

उस समय लवङ्ग वहांसे हट गई थी, बिल्कुल निराला था और आपस में खुलकर बात चीत करने का अच्छा मौका था, इसलिये कुसुम ने हंसकर कहा,—" तुम मानोगे नहीं, अच्छा, पहिले गस्सा तो उठाओ, मैं भी खाती हूं।"

नरेन्द्र,—" नहीं, आज तो ऐसा हो हीगा नहीं, आज पहिले तुम्हीं को खाना पड़ेगा।"

कुसुम,—" प्यारे! तुम्हें मेरी कसम! इतना आग्रह न करो, बस, एक कौर खाकर अपनी जूठन मुझे दो। मैं भी तुम्हारे सामने ही खाती हूं।"

निदान, ऐसा ही हुआ और कुसुम ने नरेन्द्र की प्रसादी पाकर उनके साथ बैठकर दूसरी थाली में ब्यालू की; मानो व्रत का सच्चा उद्यापन होगया!!!

नरेन्द्र ने कहा,—" प्यारी! दुराचारी सिराजुद्दौला का पतन हुआ और मीरजाफ़र तथा लाटक्लाइव ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तुम्हारी माता और उनकी मांमी की सारी स्थावर संपत्ति तुम्हें लौटा दी और दो लाख रुपए नक़द तुम्हारी भेंट किए।"

कुसुम,—" मेरी सच्ची सम्पत्ति तो, प्यारे! तुम हो, इसलिये स्थावर सम्पत्ति जो कुछ मुझे मिली है, उसे मैं तुम्हारी भेंट करती हूं, और नक़द जो दो लाख रुपए मिले हैं, उन्हें अपनी ननद के कन्यादान में अभी संकल्प कर देती हूं!"

ग्रंथकर्त्ता,—" धन्य, उन्नतहृदये! हृदयहारिणी! तू धन्य है!"

निदान, वह दिन बड़े आनन्द से व्यतीत हुआ! ईश्वर करे, ऐसा ही सुख संसार में सभी कोई पावैं।

अठारहवां परिच्छेद.

विवाह.

" विवाहान्न परं सौख्यम्।"

पलासी की लड़ाई से निपट कर नरेन्द्रसिंह ने पहिले बड़े धूमधाम से पिता का वार्षिक श्राद्ध किया और यह श्राद्ध वङ्गदेश में ऐसा हुआ कि जिसकी गाथा आज भी स्त्रियां ग्राम्य गीतों में गाया करती हैं! इसके पश्चात लवङ्गलता का विवाह हुआ, दिनाजपुर से बड़े धूमधाम से बारात आई, और नरेन्द्रसिंह ने मदनमोहन के कर में स्वयं कन्यासम्प्रदान किया।

जिस समय दूलह-बहू—दोनों कोहबर में गए, उस समय कुसुम की विचित्र छेड़छाड़ ने खूब ही रंग जमाया!

अंत में उसने मुस्कुराकर मदनमोहन से कहा,—" बबुआजी! लोग बेटी दामाद को जहांतक बनता है, देते ही हैं, किन्तु मैं तुमसे इस अवसर पर कुछ मांगती हूं! क्या मैं यह आशा कर सकती हूं कि तुम मुझे इस समय एक अदनी सी चीज़ के देने में आनाकानी न करोगे!"

मदन०,–[लज्जित हो] " आप यह क्या कह रही हैं!"

कुसुम,–" तो क्या तुम नाहीं करते हो!"

मदन०,–" जी नहीं, आप मुझे क्या आज्ञा करती हैं!"

कुसुम,–" तो पहिले तुम यह प्रतिज्ञा करो कि जो कुछ मैं चाहूंगी, उसे तुम अवश्य पूरा करोगे!"

मदन०,—" मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि आप जो आज्ञा करेंगी, प्राण रहते उसे कभी न टालूंगा।"

कुसुम,—" शाबाश! चिरंजीवी होवो! अच्छा तो सुनो—मैं यही तुमसे चाहती हूं कि तुम दोनों बराबर साल में दो चार महीने यहां आकर रहा करना, जिसमें मेरा हिया ठंढा हो! सो भी इस तरह कि तीन चार महीने पीछे आए और महीना बीस दिन रह गए।"

मदन०,—" आपकी इस आज्ञा को मैं बड़े सन्मान के साथ सिर चढ़ाता हूं ।"

कुसुम,—" ईश्वर करे; यह जोड़ी जुग जुग जीए; दूधन नहाय, पूतन फले !"

इसके पश्चात लवंगलता रीतभांत पूरी करने के लिये ससुरार गई और पंद्रह दिन के भीतर ही मदनमोहन के साथ उसे नरेन्द्र ने माधवसिंह को भेजकर बुला लिया ।

आज कुसुम का ब्याह है ! श्रीकृष्णनगर के प्रतापशाली महाराज धनेश्वरसिंह की एकमात्र पुत्री कुसुम का आज शुभविवाह है । जिसने राजकन्या होकर भी दुर्दिन के पाले पड़, बाल्यजीवन के बहुत से दिन बड़े दुःख के साथ व्यतीत किए थे, उसी चिरदुःखिनी राजकुमारी कुसुमकुमारी का आज रंगपुर के महाराज नरेन्द्रसिंह के साथ परिणय है ! आज चंपा के आनंद का वारापार नहीं है, क्योंकि उसने आज कुसुम की मां और सास—दोनों का आसन ग्रहण किया है; और उसके लिये ऐसा क्यों न होता, जबकि उसने घोर दुर्दिन के समय में भी कुसुम या उसकी माता को नहीं छोड़ा था और जहांतक चाहिए, हाड़ मास गलाकर भरपूर उन दोनों की सेवा भी की थी; किन्तु इस आनन्द के समय भी उसकी आंखें रह रह कर भर आती थीं; और उनका भरना केवल इसीलिये था कि, ' आज कुसुम के इस अलौकिक सुख के देखने के लिये उसकी माता कमलादेवी जीवित न थीं ।' कुसुम भी रह रह कर आज मां के न रहने से रो उठती थी, पर चंपा और लवङ्गलता उसके जी को तरह तरह की बातों में भरमाकर उसे उदास होने से रोकने का भरपूर प्रयत्न करती थीं ।

शुभ मुहूर्त में नरेन्द्रसिंह ने शास्त्रानुसार कुसुम का पाणिग्रहण किया और मंत्री माधवसिंह ने कन्या सम्प्रदान किया । यद्यपि कुसुम की पैतृक सम्पत्ति उसे मिल चुकी थी, यहांतक कि उसकी माता कीमामी 'बिमला' की जागीर भी उसे मिल गई थी, इसलिये नरेन्द्र ने उसे बहुत समझाया कि,—' वह कृष्णनगर अपने पिता के घर, अथवा मुर्शिदाबाद अपनी नानी के घर पहिले से चली जाय और बारात वहीं पर जाय, तथा ब्याह हो ।' किन्तु माता के न रहने से कुसुम ने कहीं का जाना स्वीकार न किया, इसलिये घर

के घर ही में उसकी इच्छा के अनुसार बिना विशेष आडंबर के नरेन्द्र ने उसका पाणिग्रहण किया।

बारात इत्यादि का विशेष झमेला तो न हुआ, किन्तु महफ़िल और ज्योनार बड़े धूमधाम से हुई और उस उत्सव में, लौर्ड क्लाइव, मिष्टर वाट्स आदि बड़े बड़े अंग्रेज़ सौदागर और नाममात्र के नव्वाब मीरज़ाफ़रखां भी निमन्त्रित होकर पधारे थे, जिनकी पहुनाई का सारा भार राजा मदनमोहन के जिम्मे था और उन्होंने उस काम को बड़ी उत्तमता के साथ पूरा किया और हंसी खुशी सब निमन्त्रित व्यक्ति अपने अपने घर गए।

इस उत्सव के आनंद में कुसुम ने—विशेष कर नरेन्द्र ने चंपा को बहुत कुछ देना चाहा था, पर उसने कुसुम के साथ अपनी जिन्दगी बिता देने के अलावे और कुछ भी न चाहा और न लिया। यहांतक कि कुसुम ने, जो एक दिन उसे अपने गले से मोतियों का कंठा उतार कर देदिया था, आज चंपा ने सास के दर्जे से उसे कुसुम को मुंह दिखाई में पहिरादिया।

सबसे बढ़कर इस महोत्सव में एक विचित्र घटना हुई, जिससे कुसुम नरेन्द्र को साक्षात देवता से भी बढ़कर समझने और भक्ति करने लगी। वह बात यह है कि बिवाह के एक दिन पहिले, नरेन्द्र कुसुम का हाथ पकड़े हुए उसे एक कमरे में ले गए, जहां पर बड़े हिफ़ाज़त के साथ वे सब टोपियां शीशे की इलामारियों में सजी हुई थीं, जिन्हें नरेन्द्र ने बातें बनाकर उससे बनवाई थीं, और कपड़े के अलावे प्रत्येक टोपी की सिलाई के पांच रुपए दिए थे। यह रहस्य आज तक कुसुम से छिपा हुआ था, सो आज अपने हाथ की सीं हुई सब टोपियों को एक जगह हिफ़ाज़त के साथ रक्खी देखकर वह बहुत ही चकित हुई, किन्तु फिर तो नरेन्द्र की कार्रवाई का हाल वह तुरंत समझगई और आंखों में आंसू भर उन के पैरों पर गिरने लगी। नरेन्द्र ने उसे रोककर गले लगा लिया और उस (कुसुम) ने आंसू टपकाते टपकाते कहा,—

" प्यारे! तुम देवता हो! सच मुच तुम प्रत्यक्ष देवता हो!!! अहा! इस दुःखिनी को तुम उसी समय से इतना चाहने लग गए थे! हाय! मैंने तुम्हारे ऐसे उन्नत हृदय का ऐसा अपूर्व परिचय अब तक नहीं पाया था!"

नरेन्द्र,—"प्यारी! सुनो तो सही, तुम-जैसी नारीरत्न के लिये जो कुछ किया जाय, थोड़ा होगा। प्रिये! सुगंधित कुसुम सिर चढ़ाने के योग्य होता है, न कि वह अनादर के साथ पैरों से ठुकराया जाय!"

कुसुम,—"सचमुच आज मैं धन्य हुई! भला, तो इन टोपियों का अब क्या किया जायगा!!!"

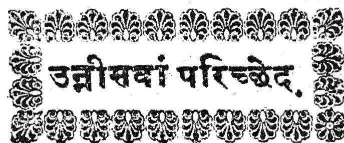
नरेन्द्र,—"जो तुम कहो?"

कुसुम,—"जैसा तुम्हें रुचे, सो करो।"

नरेन्द्र,—"मेरी तो इच्छा यह है कि ये टोपियां आज मेरे राज्य के मन्त्री आदि प्रधान प्रधान कर्मचारियों को इसलिये बांटी जायं कि वे विवाह के उत्सव पर इन्हें पहिरें और फिर बराबर वे लोग इसी टोपी को पहिर कर दरबार के समय राजसभा में आया करें। फिर जब जिनकी टोपी मैली होजायगी, उन्हें इन टोपियों में से नई टोपी दी जायगी; और मैं भी आज से इन्हीं टोपियों में की टोपी पहिरकर राजसभा में बैठा करूंगा।"

इस बात का उत्तर कुसुम ने तो कुछ भी न दिया, किन्तु उस की कृतज्ञ आंखों ने मोतियों का उपहार देकर अवश्य देदिया!

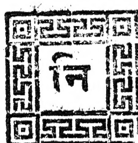
आखिर, टोपियां बांटी गई और सब राजकर्मचारियों ने बड़े आदर के साथ उसे पहिरा। उन टोपियों में इतनी विशेषता अवश्य की गई थी कि मन्त्री आदि जितने प्रधान-प्रधान कर्मचारियों को जो टोपियां दी गई थीं, उन टोपियों में पदाधिकारी की पद-मर्यादा के अनुसार मूल्यवान रत्न टांक दिए गए थे और बहुमूल्य हीरा नरेन्द्र ने अपनी टोपी में लगवाया था।



उन्नीसवां परिच्छेद.

सोहाग-रात!!!

" किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्॥"



निदान, अब कुसुम की सोहागरात का हाल लिखकर हम इस उपन्यास को समाप्त करते हैं।

हरे कमरे में, जिसमें बिल्कुल हरे रंग के ही शीशे लगे हुए थे और फर्श भी हरी मखमल का बिछा हुआ था, पन्ने के पाये का छपरखट बिछा हुआ था। हरे फ़ानूस में दो-एक मोमबत्तियां जल रही थीं, जिनसे उस आलीशान कमरे में रौशनी का ठंढा और हलका उंजाला फैला हुआ था। पलंग पर एक ओर स्त्रियों की स्वाभाविक लज्जा, संकोच और रुकावट के भार से झुकी हुई कुसुम घूंघट काढ़े और बदन समेटे हुई बैठी थी और उत्कंठा, लालसा और उमंग के उभाड़ से नरेन्द्र उसकी लज्जा दूर करने और घूंघटघटा में छिपे हुए चांद को बाहर लाने के उद्योग में जी जान से लगे हुए थे, पर कृतकार्य नहीं होते थे। जो कुसुम विवाहके पहिले नरेन्द्र से बेधड़क बातें करती, हास्य-परिहास्य करती गले से लपट जाती और गालों को चूम लिया करती थी, वही इस समय नरेन्द्र के हज़ार मनाने और बातें बनाने पर भी मुंह से बोलना तो दूर रहा, सिर भी नहीं हिलाती थीं। यद्यपि दोनों ही के हृदय में अनगिनतिन उमंगें भरी हुई थीं, पर उस समय दोनों की मानसिक गति भिन्न क्यों थी? सुनिए,—स्त्रियों की प्राकृतिक या स्वाभाविक लज्जा, संकोच, या रुकावट के कारण। किन्तु नरेन्द्र-सिंह के चित्त में इस बात पर भरोसा था कि यह स्वाभाविक लज्जा, जो नवसमागम के समय अपना अपूर्व कौतुक दिखलाया ही करती है, कुछ घंटों में अवश्य ही दूर होजायगी, क्योंकि उन्हें

किसी कवि के इस वचन पर पूरा भरोसा था और वे उस समय बार बार इसी कविता की आवृत्ति भी करने लगे थे, जिसे सुन कुसुम मन ही मन प्रसन्न होती और लज्जा के पैरों पड़ती, पर वह (लज्जा) उस समय नई दुलहिन का एकाएक साथ छोड़ना नहीं चाहती थी !

सुनिए, प्रिय पाठक ! नरेन्द्र यही कविता बार बार पढ़ते थे,—
" यह शर्मगी आंख मेरे दिल से, हया से मुंह पर नकाब कब तक ?
रहेगी दूल्हा से रोज़ सोहबत, करेगी दुलिहन हिजाब कब तक ?"

निदान, इसके बाद फिर क्या हुआ और क्योंकर, नरेन्द्र ने मनां-मुनूं कर कुसुम को कली खिलाई इसके लिखने का अधिकार हमको नहीं है । हां ! उस समय का वृत्तान्त हम अवश्य लिखेंगे, जब प्रातःकाल नरेन्द्रसिंह की आंख खुली और उन्होंने कुसुम को अपना पैर दबाते हुए देखा ! चार आंखें होते ही कुसुम ने सिर नीचा कर लिया और लड़खड़ाती हुई ज़ुबान से मुस्कुराकर यों कहा,—

" प्राणनाथ ! आज मेरा सुप्रभात है ।"

नरेन्द्रसिंह ने यह सुनते ही उसे खैंचकर गले से लगा लिया और कहा,—" क्या, केवल तुम्हारा ही ! नहीं, प्यारी ! तुम्हारे ही प्रताप से तो मेरी आंखों ने भी इस सुप्रभात के दर्शन पाए ! " (१)

कुसुम,—" ईश्वर करे, सदा ऐसा ही हो !"



इतिश्री

---

(१) इस उपन्यास को पढ़कर यदि पाठक प्रसन्न हुए हों तो उन्हें चाहिए कि इसके उपसंहार भाग " लवंगलता " उपन्यास को इस कार्यालय से मंगाकर पढ़ें ।